R.I.S.

कथा कल्पद्रुम

★

लेखक
महर्षि शिवव्रतलाल वर्मन एम. ए.

★

ऐडीटर
नन्दू भाई,
निज़ामाबाद (हैदराबाद दक्खन)

★

प्रकाशक
शिव साहित्य प्रकाशन मंडल
पोस्ट दयाल नगर, जिला अलीगढ़, उ. प्र.

प्रथमवार १०००

सर्वाधिकार स्वरक्षित

मूल्य १)

विषय-सूची

विषय		पृष्ठ संख्या
१. सम्पादकीय	....	....
२. नम्रनिवेदन	....	....
३. प्रार्थना	....	....
४. भूमिका	....	....
५. कथा कीर्तन की महिमा की कथा	....	२
६. विश्वास की महिमा की कथा	....	३
७. सत (अद्वैत) पद की महिमा की कथा	....	८
८. प्रेम की महिमा की कथा	....	२१
९. नाम की महिमा की कथा	....	३०
१०. साधु संग की महिमा की कथा	....	४१
११. साधु संग की दूसरी कथा	....	५२
१२. भक्तों के चरित्र गाने की महिमा की कथा	....	६३
१३. कर्म धर्म की महिमा की कथा	....	८५
१४. गुरु सेवा की महिमा की कथा	....	१००
१५. कथा कल्पद्रम की अंतिम विवेचना	....	१०६
	....	११६

'मनुष्य बनो', मासिक हिन्दी, दयाल सरूप पं० फकीरचन्द जी महाराज व भाई नन्दसिंह जी महाराज के सम्पादकत्व में, दयाल कम्पाउंड, पेच जामाजी अलीगढ़ से निकल रहा है। इसमें भी महर्षि शिवव्रतलाल जी महाराज के लेख रहते हैं। बड़ा अनुपम पत्र है

मैनेजर 'शिव'

सम्पादकीय

'शिव' का ध्येय है कि अपने उपदेशों से मनुष्य को धीरे २ दिव्य दृष्टि प्रदान करता हुआ परलोक के दृश्य देखने के योग्य बनाये। यह विषय एक दिन का नहीं है। इसके लिये कुछ समय की आवश्यकता है। फिर भी जिनको एक बार भी सतसंग का अवसर प्राप्त हो जाता है, उनसे यह आशा करली जाती है कि सतसंग के प्रभाव का संसकार कभी न कभी फुरने पर आजायगा, और वह उनके जीवन को उच्च और साधन समपन्न बना देगा। 'शिव' के संसार में प्रगट होने का आशय भी यही है।

'शिव' की इस लेखनी में सदैव इसी प्रकार के विषय रहते हैं। जिससे किसी न किसी तरह पाठकों को जीवन के उच्च ध्येय की ओर ध्यान देने का सुअवसर हाथ आवे। सुभावों में भिन्नता रहती है। किसी को भक्ति भाव में रुचि है, कोई ज्ञान वैराग्य की ओर अग्रसर है। किसी को एतहासिक कथा वार्ताओं के अध्यन का शौक है। 'शिव' में हर रुचि के भावों के प्रगट करने की सामग्री रहती है। फिर भी इनकी आड़ में इसी एक ध्येय के साक्षात्कार कराने का उद्देश गुप्त रूप में अपना काम करता है। सारांश व इष्ट सबका एक है। उस तक पहुँचने की राहें भिन्न हैं। 'शिव' इन सबका स्पष्टीकरण करता हुआ सब को निर्पक्ष होकर आदर व सनमान की दृष्टि से देखता है। और आशा रखता है कि इसके पाठक गण तत्वुवेत्ता और विचार शील बनें। क्योंकि बिना ज्ञान के सच्ची उदारता विवेक विचार और दिव्य दृष्टि नहीं प्राप्त होती। इसी कारण अध्यात्मिक विषयों को दरशाने में एक २ विषय को लेकर ही स्पष्ट किया जाता है। जिससे आत्म उन्नति की प्राप्ति में, विवेक विचार का सुअवसर मिले और बस। गुरु सब का कल्याण करें।

भवदीय :—
नन्दूभाई

नम्रनिवेदन

जिन सज्जनों ने "शिव" की ग्राहक संख्या बढ़ाने में सहयोग दिया है हम उनके हृदय से अनुग्रहीत हैं। और आशा है इसी प्रकार आगे भी अपनी कृपा दृष्टि बनाये रक्खेंगे, यह परोपकार की निष्काम सेवा हमने ऐसे ही सज्जनों की सहानभूति पर कर रक्खी है। मालिक सब की मनोकामना सुफल करें।

(१) श्री जय कृष्णदास जी सा० क्लाथ मरचेंट, पत्थर गिटी, हैदराबाद दखन जिन्होंने ३०) रु० और श्री भग्या जी सा० मालिक कृष्ण विलास काफी होटल, लशकर बाजार हनमानकुन्डा दखन, जिन्होंने हमको १००) रु०, सहायतार्थ "शिव" प्रकाशन को भेट किये हैं हम उनको हृदय से धन्यवाद देते हैं। मालिक से उनके भले की कामना करते हैं।

"दयाल" पत्रिका मासिक उर्दू भाषा जानने वाले सज्जनों के लाभार्थ दयाल सरूप श्री नन्दूसिंह भईयाजी महाराज केशोगिरी हैदराबाद दखन से निकाल रहे हैं। आशा है जिज्ञासुजन मगा कर लाभ उठावेंगे। बड़े महत्व का उर्दू पत्र है।

अब तक "शिव" की तीन तरंगें निकल चुकी हैं। (१) कानून ख्याल (२) आदर्श भारती वीरांगनायें। (३) दृष्टांत संदेश। (४) कथा कल्पद्रम। यह आपके सनमुख है। इससे हमारा उद्देश निष्काम भाव से मनुष्य मात्र की सेवा, सादा जीवन और उच्च विचार देने का है। प्रपंच में कब तक पड़े रहें। इसलिये इन तरंगों को बार २ विवेक विचार से पढ़िये। जिससे जीवन को सुख, आनन्द, भोग और मोक्ष का जीते जी रस मिल जाय। गुरु सबका कल्याण करें। जो चाहें इन तरंगों को १) १) रु० मूल्य भेज कर मँगा सकते हैं।

जो लोग इस 'शिव' के दो २ ग्राहक बनावेंगे उनको 'शब्द गुनजार' उर्दू महर्षि जी महाराज का १।) मूल्य का, डाक खर्च भेजने पर फ्रीभेट किया जायगा। आशा है पाठक जन इससे लाभ उठावेंगे।

भवदीय—मैनेजर 'शिव'
लल्ला भइया (बालमुकुन्द)

RS

शिव

वर्ष १] जून सन् १९५५ ई० [तरंग ४

प्रार्थना

काम करता हूँ तेरा, स्वामी सदा निष्काम बन।
लाभ की और हानि की चिन्ता नहीं कुछ मेरे मन।
मौज का लेकर सहारा हूँ मैं जीवन काटता।
चाहे घर में रक्खे चाहे भेजदे तू सूना बन।
जीने की इच्छा नहीं मरने से भय खाता नहीं।
दोनों ही सम होगये मुझको अब जीवन और मरण।
जग की लीला देखली स्वार्थ के हैं साथी सभी।
अपना कोई भी नहीं इसलिये लगी तुझ से लगन।
स्तुति निन्दा का डर मन को सताता जब नहीं।
मैं हूँ जैसा जानता है तू करूं में क्या कथन।
मेरे दाता दीन हूं आधीन हूं मैं सर्वदा।
अब दया कर तेरी वाणी का रहे श्रवण मनन।
राधास्वामी राधास्वामी राधास्वामी नाम लूं।
राधास्वामी छोड़ कर भावे नहीं कोई वचन।

भूमिका

मेरे प्रिय पाठको ! तुमने अब तक मेरे बहुत से लेख पढ़े हैं। इस समय मेरा विचार हुआ कि और सब बातों को छोड़ कर तुमको कुछ भक्तों और महात्माओं की कथायें सुनाऊं। इन कथाओं के सिलसिले में तुमको योग और वेदांत का सार मिलेगा। जिसके फलस्वरूप भक्ति भाव, ज्ञान वैराग्य का अद्भुत चमत्कार दृष्टि गोचर होगा मिथ्या न जानो। इस लेखनी के परदे में तुम देखोगे कि जीवन का आदर्श और मनुष्य जीवन के फल का महत्व क्या होता है। तुम यह न समझो कि मैंने योंही तुम्हारा समय बिताने के लिये यह स्वांग रचा है। नहीं-नहीं मैंने जो कुछ किया है सोच समझ कर और समझ बूझ कर किया है। मैं तुमको योग, ज्ञान, वेदांत, सांख्य, अध्यात्म और ज्ञान की बाबत बहुत कुछ समर्पण करता रहूंगा और इनके साक्षात चित्रों को दरशाता रहूंगा और अब की बार जान बूझ कर मैं तुमको आत्मा का परदा उठाकर तत्व को समझाने का साधन करूंगा। जिससे तुमको ज्ञान की मूर्तियों और भक्ति के सरूपों का शब्दों के रूप में साक्षात दर्शन हो सके। सम्भव हो सकता है कि कलाकार के चित्र खींचने में ग़लती हो जाय या होगई हो। ग़लती होना या करना मनुष्य का स्वभाव है। ज्यों का त्यों प्रगट करना कठिन है। पर मेरा किष्काम भाव हर जगह इसमें मौजूद है, वह तुमको पथ-भ्रष्ट न होने देगा, बल्कि जिस ध्येय को लेकर इस पवित्र मन्त्र का पट खोला गया है वह भाव या सिद्धांत अपना काम किये हुए बिना न रहेगा और आश्चर्य नहीं कि तुम समझ जाओ कि ज्ञान और भक्ति के साक्षात चमत्कार के रूप की कैसी मूर्ति होती हैं। पुस्तकों के पाठ, विषयों के अध्ययन, लेकचरों के सुनने से वह बात कठिनता से प्राप्त होती है। जो पूर्ण पुरुषों के दर्शन

से प्राप्त होती है। संसार तरसता रहता है कि इनके दर्शन हों और देख कर अपनी राय काइम करे। मेरी लालसा है कि जिस प्रकार यह महान सतपुरुष मुझको अपना दर्शन देते हैं तुमको भी अपना दरश दें। यह भाव बुरा नहीं है। स्वार्थ सिद्धि का नही है। और यदि तुम इस दृष्टि से इन शब्दों को प्रेम और भक्ति के साथ पढ़ोगे तो तुमको भी अवश्य कुछ न कुछ भक्ति का फल मिलेगा। यह मेरे लिखने का तात्पर्य है। इसी सिद्धांत पर मेरी लेखनी अपना काम करती रहती है। और यदि इसमें सार है तो यह "कथा कल्पद्रम" अपना प्रभाव डाले बिना न रहेगा और मैं अपने श्रम को सफल समझूंगा।

मनुष्य मात्र का सबसे तुच्छ सेवक।
'शिव'

कथा कीर्तन की महिमा

जो लोग अपना समय कथा कीर्तन में व्यतीत करते हैं वे धन्य हैं। क्योंकि वे संसारी भवसागर से आप तरते हैं और दूसरों को भी तारते रहते हैं। जो केवल अपने स्वार्थ वश कोई काम करते हैं उनको सफलता पूर्ण रूप में प्राप्त नहीं होती, क्योंकि प्रकृति के अटल नियम में स्वार्थ का प्रश्न कहीं और किसी अवस्था में नहीं आता। सब एक दूसरे के साथ गुथे हुए हैं। सब अपने-अपने असितत्व और व्यक्तिगत रूप में एक दूसरे के आधीन बने हुए हैं। आँख हैं, नाक है, कान हैं, हाथ पांव सब हैं, सब अलग २ भी हैं। सब मिले जुले हैं। और कौन सा काम है जिसमें सबका सहयोग नही होता, यदि सब के सब शरीक न हों तो कुछ काम न कर सकेंगे। न काम करने का फल किसी को प्राप्त होगा।

शरीर के किसी एक अंग को लेलो। जैसे खाना खाने की बात है। हाथ ग्रास उठाता है। नाक सूंघती है। आँख देखती है। होट खुलते हैं। जिभ्या स्वाद लेती है। दांत चबाते हैं। कंठ नीचे उतारता है। नाभी की वायु उसको पचाती है। जठराग्नि हज़म करती है। अन्दर की नस नाड़ियां ऐड़ी से चोटी तक सब उसके सहायक बने हुए हैं। और सारा शरीर खा पीकर स्वस्थ बना रहता है। देखो एक काम है और सब उसमें लगे हुए हैं, इनमें कौन ऐसा है जो शरीक नहीं है। यदि कोई स्वार्थ सिद्धि के उलझन में आकर इस संगठन का हानि पहुँचाना चाहता है तो प्रकृति में उसके लिये क्षमा नहीं है। वह पापी है, मुजरिम है, गुन्हेगार है। और उसके सुधार के लिए काल भगवान का त्रशूल और माया का चक्र सदैव घूमता रहता है। धर्म और पंथ का ध्येय या इष्ट यह है कि सबको लाभ पहुंचे सबके चित से दुई का ख्याल दूर हो। सब प्रेम और भक्ति के मार्ग में अपने आप को भूलें। एक ख्याल रहे, एक प्रयोजन, एक इच्छा, एक आस, एक विश्वास और यह ही मुक्ति का सरूप है। जो इस अवस्था और ध्येय को प्राप्त कर लेता है वही मालिक का सच्चा सेवक और सच्चा भक्त है। जिसमें दुई है, द्वैत भाव है स्वार्थ है वह मालिक का कभी नहीं है। वह काल का खाजा है।

अध्यात्म का सच्चा पाठ यदि कहीं मिलता है तो वह कथा कीर्तन में नसीब होता है। कथा कीतन हो रहा है। सब एक ख्याल के धागे से बँधे हैं। सबकी वृति मालिक की ओर है। सब के भाव मालिक के चरण कमल की ओर झुके हुए हैं। किसी को चिन्ता नहीं। किसी को व्याकुलता नहीं। यह नहीं प्रतीत होता कि समय कैसे बीत गया। फिक्र किसी का नहीं खाती। समय का ध्यान और संसारी वासनाओं की चिन्ता

यह काल और माया की ज़बरदस्त कड़ी हैं। इन जंजीरों की कड़ी यदि कहीं तड़ाक-तड़ाक टूटती हैं तो वह कथा कीर्तन है। मनुष्य कथा कीर्तन करते हुए अपने आपको भूल जाता है। संसार को भूल जाता है। और इन सब का भूलना और भुलाना मोक्ष है। मोक्ष और किसी वस्तु का नाम नहीं है।

हे मेरे प्यारे प्रीतम ! तू इस प्रकार मेरा प्यारा बन जा जैसे कामी पुरुष अपनी कामिनि को प्यार करता है। हे मेरे सच्चे मालिक ! तू मेरे चित्त में इस तरह बस जा जैसे कंगाल और और लोभी मनुष्यों के हृदय में धन दौलत की इच्छा बसती है। हे मेरे स्वामी ! तू मेरा सागर हो और मैं एक मछली की भाँति तुझ में बसा हुआ तेरे दर्शन का सुख अनुभव करूं ! एक पल के लिये भी तुझ से न बिछड़ूं। मुझको अपनी छवि, सुन्दरता के दीपक का परवाना बनाले। चाहे मेरे बाल व पंख जल जांय। इसकी चिन्ता नहीं। पर मेरा असितत्व तेरी हस्ती से मिलकर एक हो जाय। मुझ में और तुझ में भेद न रहे। हे प्राणों के प्राण जगदीश्वर ! तू मेरा प्राण होजा। मेरी स्वांस तेरी स्वाँस हो। तू मेरी आँख बनजा। मैं सबको तेरी आंखों से देखूं। तू मेरे हाथों में समाजा और तेरे बल से तेरे भक्तों की और प्राणी मात्र की सेवा करूं। मैं आप न रहूँ तू ही तू रहे। ऐसा हो कि यह मेरा अपना सब तेरे चरणों पर निछावर हो जाय। जिधर दृष्टि जाय तेरे सिवाय कुछ नज़र न आवे। जिधर ख्याल जाय सब में तू ही रमा हुआ दिखाई दे।

यह दशा कहाँ उत्पन्न होती है ? कथा कीर्तन में। यह अवस्था कैसे आती है ? कथा कीर्तन से। कथा सुन रहे हैं, नेत्रों से अश्रुधारा बह रही है। मन गदगद है। चित प्रसन्न है। कीर्तन कर रहे हैं। भगवान की स्तुति गा रहे हैं। मन आत्मा के ऊंचे

मंडल में चक्कर लगा रहा है। आँख नाक कान सब अंग उसी एक विचार में लीन हैं। इस समय संसार कहाँ है ? कोई बतावे तो सही ? इस समय माया के दुख और संताप कहाँ हैं ? कोई इसका रूप दिखावे तो सही। यह कथा कीर्तन की महिमा है। यह उसकी मान बड़ाई है। और मैं धन्य कहता हूं उन लोगों को जो अपने समय का कुछ भी हिस्सा कथा कीर्तन में बिताते हैं। कथा कीर्तन की बढ़ाई मैं क्या करूं ? शेष महेश शारदा और ब्रह्मा भी उसकी महिमा का वर्णन नहीं कर सकते। उसका फल उसी समय होता है। यह वह औषधि है जिसका फल तत्काल होता है, इन्तजार करने की आवश्यकता नहीं।

मज्जन फल देखिये तत्काला।
होंहि काक पिक बकहु मराला।

गुसाईं जी महाराज की वाणी है। इसमें स्नान का फल तत्काल होता है। चाहे सूरत शक्ल न बदले पर स्वभाव उसी समय बदल जाता है। कौआ कोयल के समान मीठे बचन बोलने लग जाता है, बगला हंस बन कर मोती चुगने लगता है। कथा कीर्तन वह पवित्र करने वाला सरोवर है जिसमें गोता लगाने से मन निर्मल हो जाता है और संसारी जीव परमात्मा के मन्दिर में जाकर पूजा करने का अधिकारी बन जाता है। यह कथा कीर्तन की महिमा है।

आओ प्रेमी जनों ! गुरु कबीर साहब की वाणी कथा कीर्तन के विषय में तुमको सुनायें :—

कथा कीर्तन कलि विषय भव सागर की नाव।
कहें कबीर जग तरण को नाहें और उपाव ॥
कथा कीर्तन करन की जाके निशदिन रीत।
कहें कबीर ता दास से निश्चय कीजै प्रीत ॥

कथा कीर्तन छांड़ कर करे जो और उपाय।
कहें कबीर ता साध के पास कोई मत जाय॥
कथा कीर्तन रात दिन जाके उत्तम ऐह।
कह कबीर ता साध की हम चरनन की खेह॥
कथा करो करतार की निशदिन साँझ सकार।
काम कथा को त्याग दो कहें कबीर विचार॥
काम कथा सुनिये नहीं सुनकर उपजै काम।
कहें कबीर विचार कर बिसर जात है नाम॥

वाणी सरल है। अर्थ करने से वाणी का बल घट जाता है। इसलिये जरूरत नहीं।

ओहो! देखो कैसी सुन्दर वाणी है! कैसा अच्छा और मनोहर उपदेश है! कैसी सरल वाणी है! जो हृदय के चिदाकाश में घुस कर अपना काम करती है। इससे अधिक हम कथा कीर्तन की महिमा को वर्णन नहीं कर सकते। यदि तुम इजाज़त दो तो हम तुम को उन प्राणियों की कथायें सुनावें जिन्होंने सत्य की वेदी पर अपने आपको बलिदान करदिया है। जिनके जीवन के सुहाने राग हम और तुम आज तक सुनते आते हैं। संसार में लोग सब ही मरते जीते हैं। कौन किसका नाम जानता है। पर जिन आत्माओं ने अपने आपको मालिक के नाम पर अर्पण कर दिया आज तक उन लोगों के गीत गाये जाते हैं। राजा रानी मर मिटे कौन उनके नाम लेते हैं। भक्त और भक्तिनियों की कथाओं में परमार्थ का रस मिलता है। और अब तक दरो दीवार से उनके नाम की धुन गूँज रही है। सच है जो दाना हजारों मन मिट्टी के नीचे दब कर अपने अस्तित्व को खो देता है उसी से सच्चा जीवन पैदा होता है। एक जीवन ही नहीं अनेक जीवन उत्पन्न होजाते हैं। और वह ही फैल कर सारे विश्व में

व्यापक होजाता है। मालिक के प्रेमी और भक्तों की भी ऐसी ही दशा होती है। इनमें स्वार्थ नहीं होता। इनको कभी अपने निजी स्वार्थ का ख्याल नहीं। वह सारे जगत को मालिक का रूप जानते हैं। वह समस्त प्राणियों को मालिक की संतान समझते हैं। इनमें भेदभाव कहाँ? और यह जीवन जो संसार में नज़र आ रहा है उनके जीवन का प्रतिविम्ब है।

सियाराम मय सब जग जानी।
करूँ प्रणाम जोर जुग पाणी॥

महाराज तुलसीदास जी का कैसा मनोहर वाक्य है।

विश्वास की महिमा की कथा

धर्म कर्म पूजा पाठ, भजन बन्दगी इन सब की जड़ विश्वास में है। सारांश तो यह है कि जिस नींव पर धर्म की ऊंची इमारत खड़ी की जाती है वह केवल विश्वास है। यदि विश्वास न हो तो कोई कार्य नहीं हो सकता। आखिर कोई मनुष्य क्यों कोई काम करे? केवल इसलिये कि उसकी सहायता से सफलता प्राप्त करने का विश्वास है। यदि मन में विश्वास हो जाय कि ऐसा करने से सफलता या सिद्धि न होगी तो फिर उस काम में चित न लगेगा। और न उसका भला परिणाम ही होगा। यह प्रथम वस्तु है। जिसकी दीन और दुनिया में हर समय ज़रूरत होती है। इसके बिना कुछ कार्य नहीं होता। न केवल हमारे काम धन्धों का मूल ही विश्वास है बल्कि सार तो यह है कि संसार का व्यवहार ही विश्वास के आसरे पर चल रहा है। विश्वास की जड़ काट दो फिर क्या रहेगा? कुछ भी नहीं। न भक्ति होगी। न दान किया जायगा। न बंज व्यौपार की उन्नति होगी न शासन।

इस विश्वास की अनेक शाखायें हैं। एक बालक के समान विश्वास करना। दूसरा ज्ञानी पुरुषों के समान। बालकों का किसी बात की सुध नहीं रहती क्योंकि अभी तक इन पर-माया का जाल इस क़दर नहीं तना गया है। जो बात कही वह ही मान ली गई। उनके यहाँ न तर्क कुर्तक है न दलील है न हुज्जत है। किसी बड़े बूढ़े ने जिसको बालकों से प्रेम है एक बात कहदी और उसने उसको सत्य मान लिया। और उसी समय से मन के सब भावों को उसी ओर लगा दिया। क्योंकि इनका विश्वास जिधर झुकता है सर्व अंग से झुकता है। किसी प्रकार की त्रुटि नहीं होती। और न यह कोई कमजोरी ही प्रतीत करते हैं उनके मन में यह ख्याल तक नहीं आता कि जो बात उनसे कही गई है वह ग़लत भी हो सकती है या नहीं? इस कारण वह जिस ओर ध्यान देते हैं कुछ न कुछ कर दिखाते हैं। दूसरा विश्वास ज्ञानियों का है। यह सोच विचार कर विश्वास करते हैं। सवाल के सारे पहलू, देखकर और अच्छी तरह उनकी जांच पड़ताल करके तब निर्णय करते हैं कि यह काम होगा। इनमें कमजोरी होती है क्योंकि यह विश्वास बुद्धि बल के साथ रहता है। बुद्धि हर समय बदलती रहती है और इसी कारण उनके विश्वास में वह दृढ़ता और मज़बूती नहीं आती जो बच्चों के विश्वास में होती है, क्योंकि बच्चों के विश्वास की जड़ बुद्धि में नहीं होती। आत्मा में होती है। चाहे वह किसी विषय को भले प्रकार वर्णन न कर सकें पर उनको अपने ऊपर पूरा पूरा विश्वास होता है और यह ही कारण है कि उनमें कमी या त्रुटि नहीं होती कुछ अनसमझ व्यक्ति इसको अंध विश्वास कहते हैं। उनको अभी तक इस बात का परिचय नहीं मिला कि विश्वास का पूर्ण अंग कभी किसी के दृष्टि गोचर हो ही नहीं सकता। इसलिए

बच्चों के विश्वास की क्या तुलना है, समझदारों का विश्वास भी इस अपेक्षा से अंध विश्वास होता है। हाँ वह थोड़े विवेक विचार के साथ रहता है। धार्मिक विषयों में बालकों के विश्वास की अधिक प्रशंसा है। स्वामीजी महाराज की बाणी है:—

बाल रूप होय जग को पेखो ? (अर्थात विचरो)

ज्ञानियों के विश्वास की तीन किस्में बताई गई हैं। प्रमाण, अनुमान और अनुभव। इनका नाम श्रवण, मनन और निद्धयासन भी है। अथवा इन तीनों साधनों द्वारा ऊपर के तीनों साधन प्राप्त होते हैं। जिस बात को सुनकर या दृष्टांत द्वारा यकीन होजाय वह प्रमाण ज्ञान है। जो विवेक विचार के बाद समझ में आवे और उसमें कमी का भय न हो वह अनुमान ज्ञान है। और अनुभव अथवा निद्ध-यासन या साक्षात्कार कर लेने से जिसका विश्वास इस तरह का हो कि वह स्वयं ही विश्वास का रूप बना हो, इसको अनुभव ज्ञान कहते हैं। बच्चों के विश्वास में इन तीन दर्जों की व्याख्या समझाने की ज़रूरत ही नहीं रहती। जहाँ कोई बात कही गई उनका विश्वास उस पर जम गया। और खुद बखुद ही उनके मन में विश्वास की सारी हालतें आजाती हैं। और यह ही कारण है कि उनका ख्याल झटपट स्थिर होजाता है। और जो बात कही जाती है वह उसका जल्दी ही साक्षात्कार करने लगते हैं। युवक और बड़ी आयु के मनुष्यों की यह दशा नहीं होती। यदि संयोगवश किसी को नसीब हो भी गई तो वह परम हंस गति को प्राप्त होजाते हैं। सारे साधन और अभ्यास का प्रयोजन यह है कि मनुष्य में बालकों की भांति सादगी और सच्चा विश्वास पैदा होजाय। और जब तक यह बात नहीं है, अध्यात्म विषय के ज्ञान की पूर्ण रूप में प्राप्ति नहीं होती। बालकों का भोला और सरल स्वभाव परमार्थ में सच्चा

काम बनाने वाला होता है। इनमें अगर मगर आगा पीछा देखने का सोचने का स्वभाव नहीं होता। और जवान अथवा बूढ़ों की अपेक्षा से साक्षात्कार का दर्जा हासिल कर लेते हैं। प्रह्लाद को नारद की मामूली शिक्षा ने विष्णु का दर्शन दिला दिया। हरण्यकश्यप को समझाना बुझाना भी राह पर न लासका। क्योंकि प्रह्लाद बालक था और इसी कारण सनक सनन्दन आदि ने अपने बालपन के सरल स्वभाव को सुरक्षित रखने की भगवान से प्रार्थना की थी।

तुम किसी को क्यों अध विश्वासी कहते हो। अंध विश्वास कोरा निअर्थक और कपोल कल्पित शब्द है। संसार में जो कुछ तुम देख रहे हो वह केवल ख्याल और विचार का तमाशा है। जो जैसा विचार करता है वैसा होजाता है और जो व्यक्ति जितनी दृढ़ता और विश्वास के साथ ख्याल को पक्का कर लेगा वह उतना ही जल्द ख्याल की मूर्ति बन जायगा। बात केवल इतनी है और कुछ नहीं। यदि तुम इसको तनिक भी समझ लो तो फिर आप ही आप तुम्हारे तर्क की जड़ कट जायगी।

ख्याल या विचार में एक अद्भुत शक्ति होती है। यह संसार खुद ख्याली है। यह ख्याल ही के ताने बाने (तारपाद) से बना है जिसको तुम प्रकृति, शक्ति, लक्ष्मी, दुर्गा कहते हो वह ख्याल के सिवाय और कुछ नहीं है। प्रकृति और माद्दा (matter) वास्तव में किसी ख्याल वाले के ख्याल हैं। इसलिए तुम भी जैसा ख्याल करोगे, ख्याल करते रहोगे वैसे ही बन जाओगे और वैसे ही देखने लगोगे। इसलिए विश्वास के साथ अंध का शब्द क्यों बोला जाय।

हाँ बालक और बड़ों के विश्वास में भेद होता है जो तुमको दिखा दिया गया। बचपन के विश्वास को भक्ति मार्ग, प्रेम मार्ग,

श्रद्धा मार्ग कहते हैं, वह रोता है, हँसता है, लड़ता है, झगड़ता है पर किसी हाल में उसके विश्वास में कमी नहीं आती। देखो एक बालक को उसकी माता ने मार दिया है। बच्चा रोता है। माता के कपड़े फाड़ता है। आप भी उसको मारता है, रिस भी होता है। पर क्या कोई अन्य स्त्री मिठाई या खिलोने के लालच से बालक को माता से अलग कर सकती है? राम राम कहो! क्योंकि वह लड़ता हुआ मारता हुआ, रोता हुआ फिर भी माता के प्रेम और सच्चे प्यार का विश्वास अपने मन में रखता है। वह इसको वर्णन नहीं कर सकता न इसकी व्याख्या ही कर सकता है कि वह ऐसा क्यों करता है। यह दृश्य तुम प्रत्यक्ष में देख रहे हो। यह तरीका सहज है, सरल है। बड़ी उम्र के लोग अधिकांश ज्ञान मार्ग की ओर झुके रहते हैं। रुचि रखते हैं, रात दिन काट छाँट, अगर मगर, तर्क कुतर्क दलील और हुज्जत करते हुए उस सार तत्व की ओर चलते हैं। उन को अधिक परिश्रम और कठिनाईयाँ झेलनी पड़ती हैं। क्योंकि बुद्धि की राह काँटेदार है। वहाँ झाड़ और काँटे बहुत हैं। खुद अपनी सँभाल करने का विचार रहता है। भक्ति मार्ग में ईश्वर भक्तों की रक्षा करता है एक फार्सी कवि की कैसी अनुपम वाणी है जिसका यह अर्थ है :—

अर्थ—तू दीवाना होजा जिस से तेरे ग़म को दूसरे लोग खाने लगें। पागल कोई दुख महसूस नहीं करता दूसरे लोग ही उसे देख कर दुखी होते हैं। इसके अतिरिक्त जैसे बुद्धि बढ़ती है, समझ बढ़ती है समझदार, ज्ञानी बनता है तो फिर वह ग़म जो दूसरे खाते थे अब खुद ही खाना पड़ता है। अथवा कष्ट भोगना पड़ता है। देखो ज्ञानी और बालक में कैसा भेद है?

बालकों की रक्षा माता पिता और बड़े बूढ़े करते हैं। बूढ़ों के

पास कोई कम फटकते हैं। बालक अभी माया की लपेट में नहीं आये। बूढ़ों पर माया ने हमला कर दिया और इनको बलहीन बना दिया। सब लोग उनसे अलग रहने में ही खैरियत देखते हैं। सम्भव है उनको ज्ञान ध्यान से वह एकाग्रता की अवस्था प्राप्त करके सत से मिलाप होजाय। पर राह है कठिन। कोई कुछ कह नहीं सकता ?

ज्ञान का पंथ कृपाण की धारा।
चढ़त खगेश न लागहिं पारा॥

कागभुशुण्ड जी गरुड़ जी से कहते हैं हे पक्षीराज ! ज्ञान की राह तलवार की पैनी धार है। इस पर चढ़ना कठिन है। कौन जाने कब डिग जाय। इसके पार जाना सहज नहीं है।

ज्ञान और भक्ति दोनों का रुख एक ही ध्येय की ओर है। दोनों का प्रयोजन एक है। प्रयोजन में भेद नहीं है। भेद केवल तरीके का है। एक एती मार्ग है दूसरा नेति मार्ग है। एक में हाँ-हाँ करते हुए चलना है दूसरे में नहीं नहीं करते हुए चलना है। एक में मिलते मिलाते हुए खुशी से राह तै होती है। दूसरे में काट छांट करते हुए चलना होता है। एक विष्णु का मार्ग है दूसरा शिव जी का मार्ग है। विष्णु पालन पोषण करते हैं। शिवजी संहार करते हैं। रूप बदल कर, Reform करके सत का दर्शन कराते हैं। बात एक है। कहने और करने का भेद है। पर भक्ति मार्ग सहज है और ज्ञान मार्ग कठिन है। फिर भी इन दोनों की जड़ में जो चीज़ रहती है वह विश्वास है। बिना विश्वास के दोनों ही व्यर्थ हैं। भक्ति में ईश्वर पर विश्वास रहता है जो वास्तव में अपना ही आत्मा है। ज्ञान में अपने आत्मा पर विश्वास रहता है जो ईश्वर से भिन्न नहीं है। और जिनमें बालक की सी सादगी सहज स्वभाव है वह अपना काम जल्द बना लेते हैं।

... [illegible]देव जी एक छींपी के पुत्र थे। छींपी उनको कहते हैं [illegible] पने का काम करते हैं। उनके माता पिता मर गये [illegible] (बे मा बाप) बालक को नाना नानी ने गोद लेकर [illegible] ईश्वर भक्त था। रोज़ नित्य नियम से ठाकुर जी [illegible] पूजा करता, भोग लगाता, प्रसन्न होकर भजन [illegible] वह प्रातः ही करता था। नामदेवजी बालक थे। अवेरी तक सोये रहते थे। इस कारण नाना को पूजा पाठ करते देखने का अवसर नहीं मिला। संयोगवश एक दिन सवेरी जाग पड़े और आँख मलते हुए रोने लगे। नानी बोली बेटा रोवे मत। नाना पूजा कर रहे हैं। रिस होंगे। लड़के में भक्ति का संस्कार दबा पड़ा था। चुप होगया। और एक कोने में खड़ा होकर पूजा पाठ के ढंग को चुपके से देखने लगा। नाना सब की आँखें बचा कर पूजा पाठ किया करता था। लड़का सब बातें पूरे तौर पर नहीं देख सका। पर इसके चित पर पूजा पाठ का संस्कार और उसकी महिमा का प्रभाव पड़ गया। जब नाना पूजा पाठ कर चुका। नामदेव ने उनसे पूछा। आप ठाकुर जी की पूजा करते हैं। हमको भी बताओ? हम भी पूजा करेंगे। वह बोला बेटे जब मैं कहीं चला जाऊँ तब तुम ठाकुरजी को न्हला धुला कर भोग लगाना। नामदेव चुप होगया। पर उसके चित पर पूजा का भाव रोज़ २ गहरा होता गया। अब यह दशा होगई कि प्रातः ही उठकर एक किनारे खड़े होकर नाना को पूजा करते हुए देखा करते और उनके भजन और बाणी को सुना करते। विचार रोज़ २ गहरा होता गया। संस्कार बढ़ता गया।

संयोगवश नाना को कहीं जाने का अवसर हुआ। उन्होंने ठाकुर जी को साथ लिया। नामदेव बोले तुम बाहर जाते हो तुम्हारे पीछे मैं ठाकुरजी की पूजा करूंगा। तुमने मुझ का

बचन भी दिया था। नाना बालक के सहज स्वभाव पर हँसने लगा और अपनी पूजा की पोटरी से एक बाल गोपाल की मूर्ति निकाल कर ताक पर रखदी और कहा सवेरे उठकर तुम ठाकुरजी को न्हलाना और भोग लगाना। यह मन में अति प्रसन्न हुए, अंधा क्या चाहे ? दो आंखें। बहुत दिन के बाद ठाकुरजी की पूजा का सुअवसर हाथ आया। नाना तो चला गया यह अपनी नानी के साथ शाम होते ही सो गये और सोते-सोते भी पूजा के विचार को मन में पकाते रहे। अभी आधी रात भी न बीती थी कि आँख खुल गई। प्रेमी को नींद कहां ? कहने लगे नानी चल ठाकुरजी को उतार दे। मैं पूजा करूंगा। भोग लगाऊंगा। वह बोली बेटे ! अभी रात है। सो रह। प्रातः ही पूजा पाठ करना। यह चुप, पर नींद नहीं आई। कई बार रह रह कर नानी को जगाते रहे। वह बोली तेने तो आज मेरी नींद भी हराम करदी। अभी बहुत रात बाकी है जब सुबह हो पूजा करना।

अंत में सवेरा हुआ। उन्होंने नानी को जगाया। जाड़े पाले की ऋतु, ओस के पानी से स्नान किया। नानी उनके भक्ति भाव को देख-देख चित्त में सिहाती जाती थी। उसने ठाकुरजी को ताक पर से उतार दिया। यह आसन मार कर बैठ गये। नानी से कहा तू जा मैं तो अलग नाना की भाँति ही पूजा करूंगा। हाँ भोग के लिये थोड़ा सा दूध देजा। वह बूढ़ी मन में उसके खेल को देखकर मुस्कराती हुई गई और दूध ले आई और फिर अपने काम काज में लग गई।

उन्होंने ठाकुर जी को न्हलाया धुलाया। शरीर कपड़े से पोंछा कपड़े पहनाये, चन्दन लगाया। फूल चढ़ाये, यहाँ तक तो कुछ नहीं। अब भोग लगाने का समय आया। नामदेव ने दूध का कटोरा सामने रख दिया। लो अब भोग लगाओ ? पर भला

मूर्ति कब भोग लगाने लगी। एक घड़ी देखा दो घड़ी देखा। पर मूर्ति ने टस से मस नहीं किया। अब तो नामदेवजी चिन्त में उदास हुए! अरे ठाकुरजी! तुम भोग क्यों नहीं लगाते? क्या दूध थोड़ा है? तुम्हारे पीने लायक़ तो बहुत है। तुम छोटे से तो हो! कितना दूध पीओगे? इतना पहले पीलो फिर मैं नानी से और माँग लाऊंगा। पर मूर्ति ने न उनकी बात सुनी और न दूध ही पीया। यह समझे मूर्ति नाराज़ होगई। प्रार्थना करने लगे प्रभू मैं बालक हूं तुम्हारी पूजा क्या जानूं? मुझ पर दया करो दूध पीलो। पर मूर्ति बिना हाले भूले वैसे ही पड़ी रहा। इनको क्या ख़बर थी कि नाना यों ही झूंठ मूंठ भोग लगा कर दूध को आप ही पी जाया करते थे। सीधा साधे बच्चों ने समझा था कि मूर्ति दूध पीती होगी। उनको भी होड़ लगी पर जब उसने दूध न पीया। उनके नन्हें जी को बड़ा रंज हुआ। रोने लगे। प्रार्थना करने लगे। गिड़गिड़ाने लगे। हाथ जोड़े पर मूर्ति का दिल न पसीजा। घंटों गुज़र गये। बालक को अपने खाने पीने तक की सुद्धि न रही। ठाकुरजी थे कि चुप! नामदेव ने सिर पीटा। बहुत अच्छा अगर तुम दूध नहीं पीते हो तो मैं भी आज कुछ न खाऊंगा। तुम्हारे ऊपर उपवास करूंगा। बेचारे घंटे भर पड़े रहे पर ठाकुरजी को तनिक भी दया न आई!

नामदेव को लज्जा आई, समझे मैं बड़ा पापी हूँ। ठाकुर जी नाना के हाथ का दूध पीते थे। आज नहीं पीते। अब मैं अपनी जान होम दूँगा। यह कह कर पास ही एक कटार पड़ा हुआ था उठाया और चाहा कि ज़ोर से गला काट लें। उसी समय मूर्ति ने एक हाथ से उनका हाथ पकड़ लिया और दूसरे हाथ से कटोरा उठा कर गट-गट दूध पीने लगे। सच है प्रेम का मार्ग जीवित ही मरने का मार्ग है। जब तक अपना जीवन है, इसका भाव है, मालिक के जीवन का भाग नहीं मिलता।

यह तो घर है प्रेम का खाला का घर नाहिं।
सीस काट पग तल धरे तब बैठे घर मांहि ॥
प्रेम प्याला जो पीये शीश दक्षिणा देय।
लोभी शीश न दे सके नाम प्रेम का लेय ॥
कबीर भट्टी प्रेम की बहुत जो बैठे आय।
शीश दें सो पीयेंगे ना तर पीया न जाय ॥
प्रेम प्याला नाम का चाखत अधिक रसाल।
कबीर पीना कठिन है मांगे शीष कलाल।
जोगी जंगम सेवड़ा सन्यासी दरवेश।
बिना प्रेम पहुंचे नहीं दुर्लभ सतगुरु देश ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा राना जो रुचै शीष देइ लेजाय ॥

जब तक मनुष्य मृत्यु की राह से नहीं गुज़रता मालिक का दर्शन नहीं मिलता। प्रेम में दुई नहीं है। या तो तुम ही रहो या मालिक को अपने में रहने दो, Live & Let live से यह मार्ग भिन्न है। एक मियान में दो तलवार नहीं रक्खी जातीं।

जब मैं था तब गुरु नहीं जब गुरु हैं मैं नाहिं।
प्रेम गली अति सांकुरी तामें दो न समांहि ॥
जब लग नाता देह का तब लग भक्ति न होय।
शीश उतारे हाथ सों तब कुछ होय तो होय ॥

हाथ का कटार गले तक नहीं पहुँचा। दूध का कटोरा मुंह से लग गया। नामदेव मुस्कराये। भला तुमको पहले क्या होगया था? जो मुझे इतना कष्ट दिया। मूर्ति मुस्कराती जाती थी और दूध पीती जाती थी। नामदेव सँभल बैठे। देखा सब दूध पीये जा रहे हैं। मुख पर जोर से एक थप्पड़ रसीद किया। क्या तू सब पी जायगा। मेरे लिये न छोड़ेगा। मैं क्या प्रसाद पीऊंगा। मुझे नाना की होड़ लगी है।

अस मानस मानस चच्छु चाही, भई कवि बुद्धि विमल अवगाहा।

गुसाईं तुलसीदासजी ने भी अपनी मानस रामायण के विषय में इसी मानस, प्रेम की आंख दिव्यदृष्टि की शर्त लगाई है। जो सत्य है। कबीर सा० की बाणी है:—

जब लग मरने से डरे तब लग प्रेमी नांह।
बड़ी दूर है प्रेम घर समझ लेउ मन मांहि ॥

ा भोलापन! दुई नाम को
मूर्ति ने कटोरा हाथ से रख
पके गले में बाहें डाल कर
...र में लग गये।

लौ लागी कल ना पड़े आप बिसर जन देह।
अमृत पीवे आत्मा गुरु से जुड़े सनेह।
लागी लागी क्या करे लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये जो वार पार हो जाय॥
लागी लागी क्या करे लागी सोई सराह।
लागी तब ही जानिये जो उठे कराह कराह॥
जो तू पिया की प्यारनी अपना करले री।
कलह कल्पना मेट कर चरनों चित दे री॥
शीश उतारि भूमि धरे ऊपर राखै पांव।
दास कबीरा यों कहे ऐसा होय तो आव॥
प्रेम प्याला भर पीआ राच रहा गुरु ज्ञान।
दिया नगाड़ा प्रेम का लाल खड़े मैदान॥

यह मालिक के साक्षात्कार, दर्शन का सरल और सुगम पंथ है, अब तुम्हारा प्रश्न होगा क्या सचमुच मूर्ति बोल सकती है? खा पी सकती है। न कभी ऐसा आँखों ने देखा न कानों ने सुना! क्या कोई किसी को इस प्रकार मालिक का दर्शन करा सकता है जैसा नामदेव ने अपने नाना को दिखाया था। मैं तुम से सत्य कहता हूँ कि ऐसा होता है और हो सकता है। मुद्दत हुई मुझको भी ऐसी बातों पर विश्वास नहीं था। अब गुरु की अपार दया से मैंने सार तत्व को समझ लिया और कृत्य-कृत्य होगया। मैंने तुम्हारे प्रश्न का उत्तर तो ऊपर दे दिया पर फिर भी और स्पष्ट करने के हेतु कुछ न कुछ और कहता हूं। जो कुछ मनुष्य देखता है दिखाता है वह केवल उसके विश्वास और ख्याल या विचार का परिणाम है। कृष्ण भगवान के बचन हैं "जो कोई मुझको जिस रूप में याद करता है मैं उसी रूप में उसको दर्शन देता हूं।" और तुम भी अगर चाहो तो चित्त की धार को स्थिर करके अपने अंतर में दर्शन कर सकते हो।

गुसांई तुलसीदासजी महाराज का बचन है:—

जाकी रही भावना जैसी।
प्रभु मूर्ति देखी तिन तैसी॥

—:o:—

सत (अद्वैत) पद की महिमा की कथा

मारवाड़ के राज्य में एक जगह जहाँ बीकानेर और जोधपुर की सीमा मिलती हैं बरगद का एक बड़ा वृक्ष खड़ा है। वृक्ष ने बहुत लम्बा चौड़ा मैदान घेर रक्खा है। और गर्मी के दिनों में जब धूप का मारा हुआ पथिक उसके नीचे आता है एक प्रकार से उसके साये में बैकुन्ठ के सुख का आनन्द लेता है। रेगिस्तान की दुर्गम कठिनाई का हाल कुछ न पूछो? मध्यान: जब सूर्य भगवान सिर पर आजाते हैं। इस जोर की तपन से पाला पड़ता है कि जो कहे नहीं बनता? ऊपर सूर्य नीचे गरम रेत यह प्रतीत होता है मानों किसी ने झुकते हुए भाड़ में झोंक दिया है। वायु के झोकों से गर्म रेत उड़-उड़ कर शरीर में लगती है। आँख नाक कान सब उससे भुड़भुड़े हो जाते हैं। राह चलना भी कठिन है। कोसों तक गावों का पता नहीं। न कहीं वृक्षों का साया न कहीं नदी नालों का किनारा। सूर्य का तेज तो फिर भी सहन कर लिया जाता है पर रेत की तपन से ईश्वर बचावे। जिस प्रकार एक अत्याचारी राजा का दंड तो सह लिया जाता है पर उसके अफ़सरों का दारुण शासन नहीं सहन होता। बिलकुल यह ही दशा सूर्य की धूप और रेत की तपन की होती है। आखें बन्द हैं, चित्त व्याकुल है, जी दुखी है। न कुछ कहा जाता है न सुना जाता है। इस दुख का अनुभव केवल वे ही लोग कर पाते हैं जिनको कभी मारवाड़ के भयानक रेगिस्तान में जाने का अवकाश मिल जाता है। ऐसे दुखी दीन पथिकों के लिये वह

बरगद का वृक्ष बैकुण्ठ के कल्प वृक्ष से कम मूल्य का प्रतीत नहीं होता।

हमारा समाज भी धूप के तेज को झेलते हुए वहाँ पहुंचा उसके साये के नीचे पहुँचते ही नेत्र खुल गये। मृत्यु जो निकट दीखती थी उससे बच गये। जीवन को ढाढस बंधा ईश्वर को हज़ार-हज़ार धन्यवाद दिया। और सब लोग उसके जीवन की शुभ कामना करने लगे जिसने ऐसे सूनसान विकट जगल में इस वृक्ष को लगाकर प्राणी मात्र पर अहसान किया था। सब लोगों ने वृक्ष के नीचे पहुंचते ही मौके से अपनी-अपनी दड़ियाँ बिछालीं। मैंने भी ऐसा ही किया। वह सब तो सोगये। मैं जानबूझ कर जागता रहा। नेत्र कुछ बन्द कुछ खुले। अध सोते हुए की दशा थी। पर मैंने लेट जाना या सो जाना उचित न जाना। उठ कर टहलने लगा। जब वृक्ष की दूसरी ओर गया वहाँ एक चबूतरा बना हुआ था। मुद्दत से उसको किसी ने साफ नहीं किया था। फिर भी वृक्ष के नीचे बने होने के कारण उसको कोई हानि नहीं पहुंची थी। इस चबूतरे को देखकर मेरे चित में तरह-तरह के विचार उत्पन्न होने लगे। मैं सोचन लगा। सम्भव है यह चबूतरा किसी देवता का स्थान हो। और लोग यहाँ आकर पूजा करते हों। पर ज्यादा विचार करने पर यह ख्याल ग़लत साबित हुआ। क्योंकि वहाँ पूजा करने का कोई निशान मौजूद नहीं था। मैंने दिल में कहा क्या अच्छा होता अगर इस चबूतरे के ज़बान होती तो आज वह अपना हाल सुनाता। और रेगिस्तान के एकांत में मन बहलाव का साधन बन जाता। अभी यह ख्याल मन में पैदा ही हुआ था कि सचमुच चबूतरे को ज़ुबान मिल गई। मुझको उससे प्रेम पैदा हुआ। प्रेम असली जीवन होता है। प्रेम की शक्ति करामात दिखाती है। लड़कियाँ अपनी गुड़ियों से बातचीत करती हैं। मैं अपनी छोटी

लड़की को कभी-कभी जब कोई पास नहीं होता दोपहर के समय गुड़ियों से बातचीत करते देखता हूँ। ऐसा प्रतीत होता है मानों दो प्यार करने वाले आत्मा सचाई से मिलते हुए बातें कर रहे हैं। मेरी भी इस समय यह ही दशा थी। मैं आश्चर्य में और व्याकुल होकर इसको देखने लगा। एक घड़ी दो घड़ी, तीन घड़ी तक इसको देखा किया। मुझको प्रतीत हुआ मानो चबूतरा जीवित ही मौजूद है। मैंने कहा यदि तुझको ज़बान मिली होती तो आज तुझ से मुझको कितने ही हालात सुनने में आते। इस जगह पर कितने मामले हुए होंगे। यहाँ कितनी ऐतिहासिक घटना घटी होंगी। तू बोलता क्यों नहीं कुछ तो अपनी राम कहानी सुनादे। ताकि अकेलेपन का समय कटे। और मुझको मनोरंजन की सामग्री हाथ आवे।

चबूतरे ने कहा। मैं बोल सकता हूँ। चाहे में बाहरी जुबान से बातचीत नहीं कर सकता। पर मेरी वाणी वैसे ही रहस्यमई है जैसी तुम्हारी। पर मैं बोलूं तो किससे बोलूं। लोगों के कान नहीं हैं। वह मेरी राम कहानी सुनने को तैयार नहीं हैं।

मैंने उत्तर दिया अभी थोड़े दिन की बात है मैंने काल की आवाज़ सुनी है। मेरी आँखों के सामने संसार के अगमापाई (नाशवान) होने का चित्र बहुत दिन से फिर रहा है। मेरे संसारी प्रेम के चित्र को काल चक्र ने मिटा दिया। मैं जिस को प्यार करता था काल भगवान ने दम के दम में मुझको उससे अलग कर दिया! तू समझ सकता है कि इस समय मैं बड़े ध्यान से तेरी बात सुनूंगा यदि अब तक कोई तुझ को नहीं मिला है तो कोई हर्ज नहीं। मेरी परीक्षा कर मैं इसी कारण मारा-मारा फिर रहा हूँ कि कहीं मेरे मन बहलाव की सामग्री हाथ आवे। मैं तेरी राम कहानी सुनने को तैयार हुँ।

चबूतरा बोला मैं तुमसे ज़रूर बातचीत करूंगा।

ऋषि दत्तात्रे से वृक्ष, नदी, नाले कंकड़ पत्थर सब बातें किया करते थे। आज मैं तुमको अपना कुछ हाल सुनाऊंगा।

मैंने कहा चबूतरे! तुझ से प्रेम की सुबास आती है तेरे साथ मुझको प्रेम है। मालूम नहीं मैं क्यों तेरी ओर खिचा जाता हूँ। जैसे लोहा चुम्बक की ओर खिंचता है वैसे ही मेरी भी दशा है। मैं हज़ार कानों से तेरी बात सुनूंगा। तू देर न कर। अपनी कथा मुझको सुना दे। ऐसा न हो मेरे साथी जाग उठें और और फिर हमको बातचीत का अवसर हाथ न आवे।

अब चबूतरे ने जुबान खोली। बहुत दिन हुए यहां से दस कोस के फासले पर एक गाँव बसा हुआ था। वहाँ का रईस एक राजपूत था। उसके पुत्र की शादी किसी दूसरे रईस राजपूत की लड़की से ठहरी। लड़के की आयु १५ वर्ष से अधिक न रही होगी, लड़की केवल तेरह साल की थी। उसकी बरात इस जगह से होकर गुज़री। पहले यहाँ न कोई वृक्ष था न कूआ था। इसलिये कोई मुसाफिर यहां नहीं ठहरता था। बरात गई और कई दिन के बाद शादी करके इसी जगह होकर गुज़री। जिस समय बरात घर को लौट रही थी इतफ़ाक़ की बात उसी समय राजा का लशकर इधर से जारहा था। बरातियों ने उसको देख लिया। और शाहाना वस्त्र पहने हुये राजपूत दूल्हे ने पालकी रुकवाली। लशकर के एक सिपाही से पूछा तुम क्यों और कहाँ जा रहे हो, उसने कहा राजा ने दुश्मन पर चढ़ाई की है। यहाँ से दस कोस पर मोरचा लगा है। हम लोग लड़ने को जारहे हैं। ऐसा अवसर रोज़ २ नहीं आता। बहुत सी सैना तो चली गई लड़ाई होरही होगी। हम भी जारहे हैं। अपनी बारी पर राजपूती करतब दिखावेंगे और अपना जीवन सुफल करेंगे।

जैसे ही इस छोटी आयु के युवक दूल्हे ने यह बात सुनी उसका जी उमंग से भर गया। नेत्र अंगारे के समान लाल होगये। उसकी दशा जोश के कारण ऐसी होगई कि बयान से बाहर है। उसने अपने चाचा और पिता से मारवाड़ी बोली में कहा। जिस दिन के लिये राजपूतनियां बच्चे जनती हैं वह दिन आज है। राजा संग्राम में गया है। तुम मुझको आज्ञा दो मैं भी रणभूमि में जाऊं। पिता और चाचा सच्चे राजपूत थे, बोले बेटा तू धन्य है! तुमको रोकता कौन है। तू इस बरात का राजा है। जहां तू चलेगा हम भी वहीं चलेंगे और मौत और जिन्दगी में तेरा साथ देंगे। राजपूत की असली शादी केवल रणक्षेत्र में होती है। जहाँ तलवारों के बाजे बजते हैं। खून की पिचकारियाँ चलती हैं। और फूलों के समान सिरों का वर्षा होती है। वह क्षत्री क्षत्री कब है जिसका दिल लड़ाई का नाम सुन कर बल्लियों न उछलने लगे। चल हम दोनों भी तेरे साथ हैं और इस प्रकार राजा के नमक से बरी होंगे। यदि जीवित रहे तो यश के भागी होंगे और अगर मर गये तो सीधे स्वर्ग में जाकर अप्सरायें ब्याहेंगे। पिता और चचा की बातें सुन कर सब बराती भी कहने लगे हम भी लड़ने चलेंगे। हमको फिर कभी ऐसा अवसर हाथ न आवेगा।

इस प्रकार सब लड़ने को तैयार होगये। पिता का आयुष पाकर दूल्हा अपनी दुलहिन के पास गया। भोली भाली जुबान में सब कथा कह सुनाई। लड़की तेरह साल से अधिक न थी मुस्कराती रही इसकी बात सुन कर बोली राजपूत! तेरे माता पिता धन्य हैं। मुझको आज्ञा दो तो मैं भी समर में तेरे साथ चलूँ। उसने कहा नहीं तू यहाँ ही रह। वह मान गई। और अपने हाथ से पति को पान देकर कहने लगी। जाओ मुझको

स्त्रियों में भाग्यवान साबित करो। लोग कहें इसका पति लड़ाका वीर है और मुझको राजपूतनियों में यश मिले। यदि तुम संग्राम जीत कर आये तो क्या कहना है! वर्ना इस जगह से मैं भी अग्नि के विमान पर तुम्हारे पीछे २ आऊँगी। मेरा ध्यान जी में न लाना। धर्म का विचार दिल में रखना।

सूर चला संग्राम को कबहु न देवे पींठ।
आगे चल पाछे फिरे ताका मुख नहीं दीठ॥

दूल्हा चलने को हुआ छोटी आयु की दुलहिन ने उसका पाँव चूमाँ और फिर पालकी से निकल कर उसने उनको पान के बीड़े लगाये। और अपने सुसर संबंधी, देवर जेठ, चाचा ताऊ सबको देकर कहा। प्राण नाथ! संग्राम को जाते हैं आप लोग भी उनका साथ दीजिये।

छोटी आयु की लड़की और उसका क्षत्रीपन! सब देख कर दंग रह गये। कायर से कायर का भी ऐसे अवसर पर साहस बढ़ जाता है। सब रणक्षेत्र को तैयार होगये। इस प्रकार राजा को एक नई सैना मिल गई जिसका सिपेसालार यह युवक छोटी उम्र का दूल्हा राजपूत था। जिस समय यह नई पलटन राजा की निगाह के सामने से गुज़री और उसने उनका हाल सुना उसकी तबीयत खुश होगई। राजपूत ने राजा को नमस्कार किया। राजाने शाबाशी दी। और सबसे प्रथम उसी की सैना को रणक्षेत्र में जाने का सौभाग्य प्रदान किया। दूल्हा के शरीर पर वह ही बाना था जो उसने शादी के समय पहना था। हाथ के कंगन भी नही खोले गये थे। यह लड़ने के लिये ऐसे झुके जैसे सिंह कछार में अभय होकर बिफरते हैं। एक-एक ने दस-दस और बीस-बीस को मारा और इस प्रकार लड़ कर अपनी जानें दीं। नौजवान ने तेरह आदमी मारे। अन्त में उसके गहरी

चोट आई। लोग उसको डेरे में उठा लाये। वह बोला मुझको रणभूमि से अलग मत होने दो। जब तक मेरी जान में जान है बराबर लड़ता रहूँगा। मेरी पगड़ी लेजाकर मेरी स्त्री को देदेना। केवल यह ही एक उपहार है जो मैं उसकी भेंट करता हूँ। मरहमपट्टी की गई। युवक हठीला था। फिर लड़ने को पहुँच गया। इस दफे भी दो चार आदमी उसके हाथ से मारे गये। अंत में वह भी मारा गया। इसके अपार साहस को देखकर राजा की सैना में भी एक अद्भुत जोश पैदा होगया। उसके घोड़े से गिरते ही शत्रुओं ने लाश के टुकड़े २ कर दिये। लड़ाई जोर की हुई। अंत में विजय राजा की हुई। बरात के आदमी क़रीब २ सब ही मारे गये।

जब लड़ाई होती रही दुल्हिन सब्र संतोष के साथ इसी जगह बैठी रही जहाँ तुम मुझको देखते हो। सूर्य की धूप कड़ाके की थी। पर उसने परवाह न की। अन्त में सैना जीत कर लौटी। राजा के सैनिकों ने मृतक की पगड़ी उसको दी। यह तेरे शूरवीर पति की निशानी है। वह स्वर्ग को गया। लड़की ने प्रेम और प्यार से पगड़ी लेली। चेहरे पर उदासी का नाम नहीं! बराबर मुस्कराती रही। राजा ने और अन्य पुरुषों ने उसको धैर्य बंधाया। पर उस पर सत सवार होगया था! दृष्टि में क्षणभंगुर जीवन का चित्र खिंच रहा था। उसने मुस्कराते हुए कहा :—

साध सती और सूमा इनका मता अगाध।
आसा छोड़ें देह की तिन में अधिका साध॥
सिर राखै सिर जात है सिर काटै सर होय।
जैसे बाती दीप की कटि उज्यारी होय॥
धड़ से शीश उतार दे डार देह ज्यों ढ़ेल।
काहु सूर को सोहसि घर जाने का यों खेल॥

सन्नाटा छागया चारों ओर राजा की सेना ने घेरा डाल लिया। जहां वह बैठी थी वहाँ ही चिता तैयार की गई। उसने कई दिन से कुछ खाया पीया नहीं था। पर चहरे पर जलाल बरस रहा था सत का तेज कुछ इस तरह प्रकाशमान था कि राजा और उसके अफ़सर देखकर चकित थे। वह अपने पति की पगड़ी गोद में लेकर चिता पर बैठ गई, चिता स्वतः ही भभक उठी। रीति रस्म के अनुसार उसने लोगों को सुपारी बांटी फिर शरीर का कुछ भाग जल गया। उसका सिर लटक गया। और इस प्रकार वह क्षत्रानी जिसकी आहुति रणक्षेत्र से कहीं अधिक प्रभावशाली, अति पुनीत और अधिक शिक्षाप्रद थी अग्नि के विमान पर चढ़ी हुई सीधी स्वर्ग धाम को चली गई, देवताओं ने जय जय कार की शब्द ध्वनि से आकाश को गूंजा दिया। जिसने यह दृश्य देखा जीते जी वह इसको न भुला सका।

इस क़दर किस्सा सुनाकर चबूतरे की वाणी बंद होगई। जैसे अधिक प्रेम अंग उमड़ने पर मनुष्य की वाणी गिड़गिड़ाने लगती है। साफ़-साफ़ बात नहीं कह सकता यह दशा गद्‌गद् होने पर स्वभाविक होजाती है। मेरे चित्त पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा थोड़ी देर के बाद उसने फिर जुबान खोली। दुल्हन जल गई। जब इसकी चिता ठंडी हुई राख के दो भाग किये गये। एक तो राजा के हुक्म से गंगाजी को भेजा गया। और दूसरा इसी जगह गढ़ा है जिस पर यह चबूतरा खड़ा है। पहले कुछ दिन तक राजपूत घराने के पुरुष यहाँ आकर पूजा किया करते थे और इस सती देवी से आशीर्वाद माँगा करते थे। पूजा में चावल होते थे जिसको चुगने के लिये पक्षी आजाया करते थे। उनमें से किसी ने बरगद के बीज बीठ कर दिये उससे यह वृक्ष स्वतः ही पैदा होगया जिसकी आज तुम छाया मेरे ऊपर देख रहे हो। मैं इस वृक्ष से पुराना हूँ।

मैंने पूछा क्या तू मुझको उस सती के पति और उस समय के राजा का नाम बता सकता है।

वृक्ष ने कहा नाम और रूप की हविस छोड़ दे। नाम और रूप दोनों मिथ्या हैं। मैं इधर ध्यान नहीं देता। तुझको भी उचित है आज से इस ओर से अपने चित को हटाले। सती के इस सत से शिक्षा ले। एक का हो रह दूसरे की आस छोड़ इसी में सब कुछ है। दुई में दुख है। एक में दुख नहीं है। और मस्त होकर यह दोहे गाने लगा।

पतिव्रता को सुख घना जाके पति है एक।
मन मैली विभिचारिणी जाके खसम अनेक॥
पतिव्रता मैली भली काली कुमल कुरूप।
पतिव्रता के रूप पर वारूँ रूप सरूप॥
नैनों अंतर आव तू नैन झांप तोहि लूं।
ना मैं देखूं और को ना तोय देखन दूं॥
नाम न रटा तो क्या हुआ जो अंतर है हेत।
पतिव्रता पति को भजै कबहुं नाम न लेत॥
एक नाम को जान कर दूजा दिया बहाय।
जप तप तीरथ व्रत नहीं सत गुरु चरण समाय।

मुझ पर जो हालत गुज़री वह बयान से बाहर है। मैं खुशी में बेसुध होकर इस प्रकार चबूतरे के राग को सुनने लगा कि तन-बदन की सुध न रही। आखिर राह का थका हुआ था। एक ओर ठंडी हवा चल रही थी। दूसरी ओर मन को मुग्ध करने वाले राग की धुन छिड़ी थी, चित स्थिर होगया। नींद आगई। मैं सोगया। थोड़ी देर के बाद आँख खुली। मेरे साथी अपनी दड़ियां लपेट रहे थे। मैंने भी दड़ी उठाली और उनके साथ दूसरी ओर को चल दिया। चलते समय मैंने चबूतरे को

नमस्कार किया। जिसने सती के सच्चे इतिहास में मुझको सत की, अद्वैत की, सार तत्व की शिक्षा दी।

मैं अबला पीउ पीउ करूं निर्गुण मेरा पीउ।
सुन्न सनेही गुरु बिन और न देखूं जीउ॥

प्रेम की महिमा की कथा

दुनियाँ में सब कुछ सम्भव है और कुछ भी सम्भव नहीं। इसका निर्णय केवल हमारी और तुम्हारी मन की फुरना की लीला है। मन ने चाहा तो नामुमकिन को मुमकिन बना दिया। मन ने नहीं चाहा तो मुमकिन भी गैरमुमकिन होगया। यह जगत वास्तव में मन की लीला का खेल है। तुम कहते हो कानून कुदरत अथवा प्राकृतिक नियम के विपरीत कोई कार्य नही होता पर क्या तुमने कानून कुदरत या प्रकृति को अपनी मुट्ठी में कर लिया है। प्रथम इस पर अपना अधिकार जमा लो फिर मुझसे ऐसी बात करो। इससे पहले मैं तुम्हारी बात सुनने के लिए तैयार नहीं हूं। और कोई व्यक्ति जो मन या मानसी शक्ति और उसकी लीलाओं का हाल जानता है वह तुम्हारे इस भोले पन पर हंसेगा। इसलिये इस महदूद (मंडलीक) मन की शक्तियों को महदूद (संकुचित) बनाने का ख्याल न करो। इसका अध्ययन करो उस समय तुम कुछ-कुछ प्रकृति के अटल नियम को समझ सकोगे। और फिर मेरे विचार से सहमत होकर कहने लगोगे—

जेती लहर समुद्र की तेती मन की दौड़।
सहजे हीरा नीपजे जो मन आवे और।

एक बात तो यह हुई। दूसरी बात यह है कि जब कोई बात कही जाय तो उसके शब्दों पर न जाओ। शब्दों के भावों पर दृष्टि रक्खो। बालक "तोटी" कहता है माता रोटी समझ लेती है। शब्दों में मौत है भ्रम है। शब्दों के भाव अथवा सारांश में

जीवन है सार है। जो बात कही जाती है किसी प्रयोजन या ध्येय को सामने रखकर कही जाती है। तुमको बातों से मतलब है या उसके प्रयोजन या सारांश से १ लिफ़ाफ़ा फाड़ दिया जाता है। ख़त पढ़ लिया जाता है। लिफ़ाफ़ा बाहर है ख़त उसके भीतर है। लिफ़ाफ़ा बाहरी गिलाफ़ कोष है ख़त भीतरी अंतरी आत्मा है सारांश है। लिफ़ाफ़ा पाकर तुम उसको पास रखते हो या ख़त को ? ख़त सनद है प्रमाण है साक्षी है, दस्तावेज़ है जो वक्त पर काम में आता है। या लिफाफ़ा इसी प्रकार शब्दों का भी हाल है। शब्द तो बाहरी लिफ़ाफे हैं। इसके भीतर जो अर्थ गुप्त हैं उनकी ओर दृष्टि रक्खो तब तुमको असलियत सार वस्तु का दर्शन प्राप्त होगा। वरन् भाई ! खाली के खाली रह जाओगे। लिफ़ाफ़ा ही लिफ़ाफ़ा हाथ रहेगा। सारांश न मिलेगा।

पोथी पढ़ पढ़ जग मूआ पंडित भया न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का पढ़े सो पंडित होय॥

यदि इन दोनों बातों को तुमने भले प्रकार समझ लिया तो आओ मैं तुमको एक कथा सुनाऊं। कौन जाने ! तुम में भी ईश्वर का प्रेमी पैदा हो जाय। और तुम्हारा नाम भी उसके प्रेमियों की गिनती में आजाय। प्यारे तो उसके तुम अब भी हो केवल भूल भ्रम में भटक रहे हो। लिफ़ाफे की ओर दृष्टि रहती है। लिफ़ाफे हो पर मस्त बने बैठे हो। देखो उसकी गोद सदा तुम्हारे प्यार करने के लिए खुली हुई है ! लो अब कथा सुनो !

नारद आदि ऋषि भगवान के बड़े भक्त हैं। रात दिन बीन बजा-बजा कर कथा कीर्तन करते रहते हैं। एक समय घूमते फिरते एक बनिये के घर पहुँचे। बनिया नेक था। साधुओं की सेवा करता था। साधु समझ कर उनको डंडवत प्रणाम किया।

बड़ी आवभगति की। सचाई प्रेम और श्रद्धा से भोजन कराया। नारद बड़े प्रसन्न हुए। कहने लगे तू बड़ा धर्मात्मा है। क्या तुझको किसी बात की इच्छा है? उसने हाथ जोड़कर विनय की महाराज! भगवान का दिया सब कुछ मेरे पास है। धन, दौलत, हाथी, घोड़े, गाँव, गाय, भैंस, मैं आपसे क्या मागू? हाँ मालिक ने मुझको कोई सन्तान नहीं दी। इसकी इच्छा तो ज़रूर रहती है। नारद ने कहा भली बात है। मैं विष्णु भगवान के पास जाता हूं तेरी शिफारिश करूंगा। यकीन है कि तेरे सन्तान हो जायगी यह कह वहां से चल खड़े हुए।

वह विष्णुलोक में पहुंचे। जब भगवान् के धाम के निकट आये भगवान् इनसे प्रसन्न होकर मिले। क्यों नारद जी! यहाँ कैसे, आगमन हुआ? उन्होंने उत्तर दिया महाप्रभो! आपका एक भक्त है। बड़ा ही धर्मात्मा और नेक है। उसके कोई सन्तान नहीं है। मैं प्रार्थना करने आया हूँ कि आप उस पर दया करें और उसको संतान का बर दें। भगवान् मुस्कराये। नारद! तुम जानते हो मेरी रचना के सब काम बांट दिये गये हैं। सन्तान देने के काम का सम्बन्ध ब्रह्मा से है। मैं तो केवल पालन पोषण करता हूं। मैं अभी ब्रह्मा जी को बुलाता हूं। देखो वह क्या कहते हैं। हुक्म की देर थी। दूत दौड़े और ब्रह्मा जी बगल में पोथी पत्रा दबाये हुए आ पहुंचे। भगवान् ने नारद जी की बात उनसे कही। ब्रह्मा जी ने पत्रा खोला, बोले कृपासागर! इसके तो एक सन्तान भी भाग में नहीं लिखी है। तब विष्णु भगवान् नारदजी से बोले देखो महाराज! अब मैं क्या करूँ। ब्रह्माजी ने कोई सन्तान की हामी नहीं भरी। नियम टूट नहीं सकता। सारा सृष्टि क्रम नियम के अनुकूल चलता है। मैं विवश हूं क्या करूँ। इस कारण आपकी शिफारिश के बमूजिब कार्य करना कठिन है। नारद मन में उदास हुए।

विष्णु जी को नमस्कार करके फिर मृतलोक को चले आये। और बनिये को सारा हाल ज्यों का त्यों सुना दिया। वह भी निराश हुआ। कहने लगा बहुत अच्छा। भाग्य का भोग! ब्रह्मा के लेखे को कौन मेंट सकता है? जब उसने मेरे भाग्य में सन्तान नहीं लिखी फिर कोई क्या कर सकता है? आप कुछ चिन्ता न करें। भगवान् ने मुझको सब कुछ दे रक्खा है। पुत्र नहीं है तो न सही। सब चीज़ सबके बांट में नहीं आती। मैं फिर भी खुश हूँ उसको हजार २ धन्यवाद है! नारद उसकी महमानी के बाद फिर अपनी वीणा बजाते हुए किसी ओर भगवान् के गुणानवाद गाते हुए चले गये।

मौज आधीन इस घटना के दो महीने बाद एक मस्त और मजजूब अवधूत उस बनिये के पास आ निकला। इसका स्वभाव तो साधु सेवा का था ही साधु को आता देख प्रेम के साथ झपटा। साधु को घर लाया। पाँव धोये, आसन पर बिठाया और मीठी २ बातें कहने के बाद उसको प्रेम के साथ भोजन कराया। साधू बड़ा प्रसन्न हुआ! कहने लगा माँग क्या मांगता है? बनिया कुछ न बोला। फिर साधु ने कहा तू चुप क्यों है, माँगता क्यों नहीं? वह हाथ जोड़ कर कहने लगा। महाराज! इसी प्रकार एक समय मुझसे नारदजी ने भी पूछा था। और जब मैंने उनको अपना हाल सुनाया। वह बैकुण्ठ में गये, वहाँ जाकर विष्णु भगवान् और ब्रह्मा जी से पूछा तो उत्तर मिला कि मेरे भाग्य में कोई सन्तान नहीं लिखी है। इसी कारण अब मैं यह सवाल किसी से नहीं करता। साधु मस्त अवधूत था। उसके नेत्र अंगारे की भाँति लाल थे। उसने कहा नारद! सारद! तू क्या नारद की बात करता है? जा एक, दो, तीन, चार। यह कहा और अवधूत वहाँ से चला गया, मालिक की दया और करनी

बनिये के चार वर्ष में चार पुत्र पैदा हुए । एक से एक सुन्दर ! क्या कहा जाय ! साधू कर्म की रेख में मेख मारते हैं।

गुरु पूरे को समरथ जान । कर्म बाण उलटावें आन ।
गुरु समरथ सिर पर खड़े काह कमी तोहि दास ।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें मुक्ति न छाँड़ें पास ॥
दास दुखी तो मैं दुखी आदि अन्त तिहुं काल ।
पलक एक में प्रगट होय क्षण में करूं निहाल ॥

बनिये की खुशी का क्या कहना ! उसने नारदजी को झूंठा समझ लिया और उनकी ओर से उसकी श्रद्धा हट गई । पाँच वर्ष बीते, दैवयोग से नारदजी फिर वहां आ निकले । बनिया उनसे मिला आवभक्ति भी की, पर मन में चोर था, कपट और छल की भक्ति छुपी नहीं रहती, उसका प्रतिविम्ब नारद के चित्त पर पड़ा। चार लड़के इधर उधर खेल रहे थे । नारद ने दृष्टि ऊंची की । बनिये को सिरसे पांव तक देखा । फिर लड़कों को देखा । आश्चर्य हुआ ! पूछने लगे यह लड़के किसके हैं ? बनिया बोला महाराज ! आपके ही सेवक हैं । नारदजी ने पूछा यह क्या बात है ? ब्रह्माजी ने तो तेरे भाग्य में पुत्र बदे ही नहीं थे ! उसने उत्तर में कहा सुनिये महाराज एक दिन एक अलमस्त साधु का मेरे घर आगमन हुआ । मैंने अपने स्वभाव के अनुसार उनकी भी सेवा की । वह प्रसन्न हुए । बोले कुछ माँग ? मैंने कहा महाराज मुझ से नारदजी ने भी एक दफे ऐसे ही पूछा था । पर जब मैंने सन्तान की इच्छा प्रगट की वह विष्णु भगवान के पास गये और वहाँ से खबर लाये कि मेरे भाग्य में कोई सन्तान नहीं लिखी है । यह सुनकर वह साधु कुछ बिगड़े । और दो चार । अपशब्द आपको भी कहे और मुझसे कहा ले एक, दो, तीन, चार और देखो महाराज ! यह चार पुत्र उन साधु के बचनों के प्रभाव

से मेरे अंधेरे घर के प्रकाश करने वाले पैदा हुए !

रवि को तेज घटै नहीं जो घन चढ़ै घमंड ।
साधु बचन पलटे नहीं पलट जाय ब्रह्मण्ड ॥

इतना सुनना था कि नारदजी के चित्त में आग लग गई ! वहां घड़ी भर भी टिकना दुर्लभ होगया ! बनिये ने बहुत कुछ इनय विनय की पर उन्होंने उसकी महमानी भी क़बूल न की। क्रोधातुर हो सीधे विष्णु लोक को चल दिये। और मन ही मन में कहते जाते थे कि आज विष्णु भगवान को ऐसा श्राप दूंगा कि वह भी याद करें। मेरा अपमान किया और कराया। मेरी विनय न सुनी न मेरी बात मानी। वह जानते हैं कि मेरे ऊपर कोई नहीं है। इस प्रकार मन की तरंगों में भरे हुए वह विष्णुजी के धाम में आये। विष्णुजी ने अगवानी की। बैठने को आसन दिया पर यहाँ बैठता कौन ! नारद बोले तुम समझते हो मेरा तो सब पर अधिकार है। जो चाहूंगा करूंगा। कोई रोक लगाने वाला। कहने सुनने वाला ऊपर नहीं है। जो चाहूँगा कर करा लूंगा। पर तुम भूल गये मैं नारद हूं.....।भगवान ने देखा नारद के चित्त में क्रोधाग्नि की आग भड़क रही है। अपनी माया को प्रेरणा की। और बातचीत का रुख़ बदल कर कहने लगे। आदि ऋषि बहुत दिन से सैर को नहीं निकले। चलो आज कहीं तुम्हारे साथ सैर कर आवें। नारद का क्रोध ठंडा हुआ। दोनों साथ चल निकले। और कई मील तक चले गये। माया अपना काम कर रही थी। एक ख्याली रेगिस्तान पैदा होगया। सुनसान बियाबान मैदान। न मनुष्य न हैवान। कोसों न वृक्षों का पता न कहीं नदी नालों का नाम। सूर्य पूर्ण रूप में चमक रहा था। माया ने नारद के मन में भूख प्यास उत्पन्न करदी। वह घबड़ा गये कहने लगे महा प्रभो ! आपने अच्छी सैर

कराई। भूख प्यास से जान निकल रही है। कुछ खाने पीने को मिले तो जान बचे। विष्णु भगवान बोले यहाँ खाना पीना कहाँ यह तो उजाड़ जंगल है। चलो आगे चलें थोड़ी दूर पर मेरा एक भक्त रहता है। उसका झोंपड़ा निकट है। कौन जाने वहां खाने को कुछ मिल जाय।

दोनों ने किसी तरह गिरते पड़ते कई मील और तै किये। भूख प्यास से नारद की दशा बुरी थी। जुबान गर्मी के कारण सूख गई थी। दूर से झोंपड़ा दिखाई दिया। जान में जान आई। दोनों उस ओर चले। जब निकट पहुंचे तो एक पुरुष झोंपड़े में से निकला। उनको देख कर अति प्रसन्न हुआ। आज मेरे अहोभाग्य! जो आप पधारे। आज तीन दिन से कोई अतिथि नहीं आया। तीन दिन से ही मैंने खाना नहीं खाया। आज आपके दर्शन से दाना पानी नसीब होगा। नारद तो व्याकुल हो रहे थे कहने लगे भाई! भूख प्यास से जान निकल रही है! झटपट कुछ दे। अधिक बातें न बना। उसने हाथ जोड़ कर कहा। बहुत अच्छा। थोड़ी ही देर आप और बैठिये। मैं अभी अन्दर जाकर भोजन तैयार कर लाता हूं नारद और भगवान् झोंपड़े के आगे बैठ गये। और वह अन्दर चला गया।

ग़रीब के पास दो लोटे पानी था। आग जलाने को लकड़ी नहीं थी। उसने चकमक पत्थर निकाला। अपने एक पांव में धोती खूब कस कर लपेटली। उसको घी से तर कर लिया। और आग लगा कर चूल्हे में रख लिया। और आप घी से आटे को गूँधने लगा। धोती भी घर में एक ही थी। आप नंगधड़ंग था। धोती पाँव से बँध रही थी। और आग भक २ जल रही थी। नारद बाहर से खाने को जल्दी मचा रहे थे।

यह कह रहा था महाराज ! तनिक धीर धरो, भोजन शीघ्र ही तैयार हुआ जाता है। पर इनको धैर्य कहाँ ! उसने पूरी कढ़ाई में डाल दी वह छनछनाने लगी। नारद को प्रतीत होगया खाना बन रहा है। और पूरी कढ़ाई में पड़ी। नारद छनछनाहट सुन रहे थे। पर अधीर थे। पूछा, फिर उसने थोड़े धैर्य धरने की प्रार्थना की। पर यहाँ सब्र कैसा ! अखिर न रहा गया। दोनों उठकर अन्दर दाखिल हुए। जहाँ पूरियाँ सिक रहीं थीं। यहाँ जो दृश्य देखा नारद ने अपने जीवन में कभी नहीं देखा था ! चूल्हे में पाँव दिए हुए बैठा है, पाँव जल रहा है, शरीर पर एक कपड़ा तक नहीं। नंगधड़ंग ! चहरे की कांति प्रेम के तेज से प्रकाशमान है ! प्रेममग्न ! नेत्रों से नीर बह रहा है ! इन दोनों को आते देख कर बोला महाराज ! आईये आज अहो भाग्य ! मेरा झोंपड़ा आपके चरण कमलों से पवित्र होगया ! पधारिये केवल पूरी और नमक हाजिर है। भोजन कीजिये और मुझको कृतार्थ करिये। उसने बैठे बैठे ही उनको खाना परोस दिया। दोनों खाने लगे। जल के लोटे भरे रक्खे थे। जल पीया तब जाकर जान में जान आई। आँखें खुलीं और वह उसी हाल में बैठा हुआ पूरी सेक-सेक कर दे रहा था। वह आनन्द में ऐसा मग्न था कि उसको पैर की जलन का किंचित भी ध्यान नहीं था। प्रेम की अश्रुधारा नेत्रों से बह रही थी। वह मुस्कराता भी जाता था। उनसे मीठी बातें भी करता जाता था। हाथ काम में लगे हुए थे। महाराज आप दोनों ने मुझ पर बड़ी दया की। मेरे भाग्य का क्या कहना है ! खेद केवल इतना है कि जिस प्रकार मैं चाहता हूँ आपकी सेवा न कर सका। ग़रीब का झोंपड़ा है जो कुछ मौजूद है हाजिर है। आप फिर कभी इधर पधारें तो दास को याद रक्खियेगा। ऐसी-ऐसी बातें हो रही थीं।

खूब रुचि के साथ भोजन पाया और पानी पीया। नारद की जान में जान आई। पर यह दृश्य देख कर आश्चर्य चकित थे! उनके धैर्य की कोई सीमा नहीं थी। चुप चाप! न कुछ कहते बना न सुनते। जब खा पीकर इससे विदा होकर कुछ दूर निकल आये नारद ने विष्णु भगवान् से पूछा महाराज! यह क्या मामला था? और विष्णु जी बोले देखो ऋषि! जहाँ इस प्रकार के प्राणी अपने अपको मुझ पर निछावर करते हैं वहाँ मेरी कुछ नहीं चलती। यह मुझसे कहीं अधिक शक्तिशाली हैं। इनके प्रेम का गाढ़ बन्धन मुझको अपने पास में बाँधे रखता है। इनका स्थान मेरी आत्मा है। यह मेरे आत्मा हैं। आत्मा मंडलीक अथवा नियमबद्ध नही है। यहाँ किसी प्रकार के बन्धन का विचार नहीं रहता। यह जो कुछ कहते हैं सच होता है। और जो कर गुज़रते हैं उसका रोकने वाला कोई नहीं। ऐसे प्राणी मेरी आत्मा में बसते हैं और ऐसे एक हो जाते हैं कि कोई इनमें और मेरे आत्मा में भेद की रेखा नहीं खींच सकता। यह मेरे प्राणों के प्राण और मेरी जान की जान हैं। कैसे सम्भव है कि मैं इनकी न सुनूँ। यहाँ ब्रह्मा का लेखा काम नहीं करता।

साध हमारी आत्मा हम साधन के जीव।
साधन में हम यों रहें ज्यों पै मद्धे घीव॥
अलख पुरुष की आरसी संतन ही की देह।
लखा जो चाहे अलख को इन्हीं में लख लेह॥
साधुन के मैं सङ्ग हूँ अन्त कहूं नहीं जाँउ।
जो मोहि अपै प्रीति से साधुन मुख होय खांउ॥
साध मिले साहब मिले अंतर रही न रेख।
मनसा वाचा कर्मणा साधू साहब एक॥

सुख देवें दुख को हरें दूर करें अपराध।
कह कबीर वह कब मिलें परम सनेही साध॥

हे नारद! जो कर्म कांडी धर्म के पाबन्द और नियमबद्ध हैं वे और लोग हैं। जिन्होंने मेरे अर्पण अपने तन मन को जलाकर भष्म कर दिया है वे और हैं। उनको इन से कोई सम्बंध नहीं। उनके लिये कोई क़ायदा और नियम नहीं हैं। नियम और बन्धन शरीर के लिये है। आत्मा को कोई कायदा कानून नहीं है। तुम शिफ़ारिश करने आये थे। मैंने भी नियम की पाबन्दी की। वह बावला मस्त अवघड़ साधू मेरी आत्मा था। आत्मा में दाखिल होकर उसने बर दे दिया। तुमने मुझको अपने से अलग समझा, प्रार्थना की जो नामंजूर हुई। उसने तनिक भी दुई का भान नहीं किया। जिस प्रकार अल्लड़ लड़के के समान कोई पुरुष अपने पिता की दौलत को किसी को दे देता है उसी प्रकार उसका भी काम था। मेरा बस यहां नहीं चलता। तुम मुझको श्राप देने के हेतु आये थे। अब तुम खुद ही फैसला करो। मैं क्या कहूं।

माला फेरूं न हरि भजूं मुख ते कहूँ न राम।
मेरो राम जब मोहि भजै तब पाऊँ विश्राम।

ऐसे अवधूतों का तो मुझको उल्टा भजन करना पड़ता है! क्या कहूँ बेबस हूँ।

हे नारद! मुर्ग रोज़ सुबह उठकर बाँग देता है। सूर्य से कितना दूर रहता है। शाम को दीपक जलता है परवाना तड़पता हुआ उस पर गिरता है और जलभुन कर उससे एक हो रहता है। मानों यह क्षण भंगी शरीर दीपक के साथ एक हो रहने में बाधक था। ऐसे भक्तजन ही परवानों के समान हैं, वह अपने असितत्व को, जीवन को मुझ से पृथक नहीं समझते। फिर मैं

कैसे उनसे अलग रहा। यह कठिन है। ऐसा कभी हुआ न होगा।

हे नारद! तुम मुझको बैकुण्ठ में खोजते हो। भक्तों का मन ही मेरे रहने का स्थान है। उन्होंने मुझको विवश बना रक्खा है कि मैं उनके हृदय में बसूं। तुम मेरे पीछे फिरते हो। मैं उनके पीछे लगा फिरता हूँ। कैसी अद्भुत और विचित्र गति है!

कबीर मन मृतक हुआ दुर्बल हुआ शरीरी।
पाछे पाछे हरि फिरें कहें कबीर कबीर॥

उनको किसी चीज़ की इच्छा नहीं। यह मुक्ति की भी कामना नहीं रखते। मेरे निष्काम भक्त हैं। उनकी भक्ति निःस्वार्थ है। यह प्रेम के मतवाले प्रेमी हैं।

राता माता नाम का पीया प्रेम अघाय।
मतवाला दीदार का मांगे मुक्ति बलाय॥

हे नारद! तुम मुझको बैकुन्ठ में न ढूँढ़ो। इन भक्तों के हृदय में मेरी तलाश करो मैं रात और दिन उसी में बसता हूं।

अलख पुरुष की आरसी सन्तन ही की देह।
लखा जो चाहे अलख को इन ही में लख लेह॥
मन मेरा पंछी भया उड़कर चला अकाश।
स्वर्ग लोक खाली पड़ा साहब सन्तन पास॥

हे नारद! यह मैंने सच्ची-सच्ची बातें तुम से कही हैं और वह भी केवल इसलिये कि तुमको प्रेम की शिक्षा देना मन्जूर था।

नारद की आखें खुलीं! त्राहि मान! त्राहि मान! करते हुए पद कमलों से लिपट गये। विष्णु ने उठा कर गले से लगा लिया। मेरे प्यारे! क्या वस्तु है जिसकी तुमको लालसा है? मैं सब कुछ तुम को दे सकता हूँ तुम मुझको चाहते हो मैं मौजूद हूं।

दास दुखी तो मैं दुखी आदि अंत तिहुं काल।
पलक एक में प्रगट होय क्षण में करूं निहाल।

गुरु समरथ सिर पर खड़े काह कमी तोहि दास।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें मुक्ति न छांड़ें पास॥

हे नारद! जो कुछ खेल किया गया वह केवल इसलिये कि तुम से दुई के भ्रम को दूर कर दिया जाय। इसके अतिरिक्त और कोई प्रयोजन नहीं था।

नारद लज्जावश पानी २ होगये। आँखों से प्रेम की आश्रु धारा बहने लगी। और भगवान के चरणों में मस्तिष्क नवा कर स्तुति गाने लगे।

जय जय दाता सुर मुनि त्राता व्यापक परमानन्दा।
जय जय अविनाशी घट घट बासी माया रहित मुकन्दा।
जय अपरम पारा जगत अधारा पार न पावे कोई।
जय परम कृपाला दीन दयाला करोहु, अनुग्रह सोई॥

—:o:—

नाम की महिमा की कथा

नासमझ कहते हैं। नाम में कुछ नहीं धरा है। मीठा कहने से मुंह मीठा नहीं होता है। यदि इनकी बात ठीक है तो इनके पिता का नाम लेकर गाली या कुछ कठोर शब्द तो कह दीजिये। फिर देखिये कि उनके मिज़ाज का पारा किस डिग्री पर चढ़ जाता है। ऐसा क्यों? नाम तो कोई चीज़ नहीं है। फिर तुमको गुस्सा क्यों आगया। जो लोग नाम और रूप के जगत में रहते हैं। नाम और रूप के जगत में जिनका व्यवहार है वह कैसे कहते हैं कि नाम लेने से कोई लाभ नहीं होता। नाम में बड़ी शक्ति है।

शब्द ही मारे मर गये शब्द ही तजिया राज।
जो यह शब्द विवेकिया ताका सरिया काज॥

क्या खटाई के नाम लेने से सचमुच मुंह में पानी नहीं भर आता ? क्या मिठाई कहने से वाक़ई लड्डू पेड़ों का चित्र मन की आँखों के सामने नहीं आजाता ? तुम नाहक़ ऐसी बेतुकी बाते करते रहते हो। अभी मैं तुमको एक दर्द भरी रोमांचकारी कहानी सुनादूं। तुम रोने लगोगे। अभी एक वीर रस का इतिहास कानों में पड़ने लगे तुम्हारे रोंगटे खड़े हो जायेंगे। क्या रोने की आवाज़ सुनकर तुम्हारा हृदय नहीं पसीजता ! क्या प्रेम और प्यार की बातों का तुम्हारे चित पर प्रभाव नहीं पड़ता हम तो कहते हैं हर व्यक्ति पर कुछ न कुछ असर होता है। यह सब नाम के नज़ारे हैं, दृश्य हैं। यदि यह नाम का प्रभाव नहीं तो और क्या है ? और फिर भी तुम नासमझी से कहते हो नाम में धरा क्या है। नाम में सब कुछ है। नाम में पूरा इतिहास है। नाम में जादू का असर है। नाम ही मंत्र यंत्र और तंत्र है। अगर तुम्हारा नाम लेकर पुकारूं तो क्या तुम न बोलोगे ? तुम्हारी शक्ति क्या है जो न बोलो। क्योंकि जो नाम के जगत में रहता है नाम ही उसकी जान है। कैसे वह इसके प्रभाव में न आवेगा।

यह एक साधारण सी बात है। इसी प्रकार जो लोग मालिक के नाम का जप करते हैं मालिक उनकी सुनता है। और वे दिनों दिन मालिक के नाम में रत होते हुए चले जाते हैं। तुम मेरी बात पर कुछ न कुछ विश्वास भी किया करो। तुम को मालूम होना चाहिये कि हर प्रकार की वाणी में एक तरह की समझाने बुझाने की शक्ति हुआ करती है। शब्द वास्तव में ख्याल की मूर्ति हैं। एक एक शब्द में एक एक ख्याल मौजूद रहता है। तुमने कहा घोड़ा। मैंने समझ लिया एक ऐसे पशु का ख्याल दिलाते हो। जिस का रंग रूप ऐसा है। इस पर जीन कसा जाता है और लोग इसकी पीठ पर सवारी करते हैं। एक ख्याल था जो तुम्हारे मन में टकराया। शब्द के रूप में तुम्हारी जिभ्या से निकला।

और मेरे कानों के परदे से टक्कर खाता हुआ चित्त में बैठ गया। और मैंने सहज में ही समझ लिया कि तुम्हारा अर्थ घोड़ा शब्द से क्या है। इन चौंतीस या बावन अक्षरों के खेल से सब शब्द बने हैं। और यह शब्द निरे ख्याल ही हैं और कुछ नहीं। जब मैं गाय कहता हूँ तुम गाय समझते हो। जब मैं भैंस कहता हूं तुम भैंस समझो। क्योंकि मेरे मन के भाव की छाया शब्द के रूप में तुम्हारे मन पर पड़ती है और तुम उसको वह ही समझते हो जो मैं समझाना चाहता हूँ। यह क्या बात है? कौनसी शक्ति है जो इस प्रकार तुमको समझाती है? इसको संस्कृत में शब्द की शक्ति कहते हैं। यह शब्द और कुछ नहीं। यह केवल 'नाम' है। और जो तुम पढ़ते लिखते, सुनते, सोचते, कहते और कहलवाते रहते हो सब 'नाम' है। नाम से अलग नहीं है। और ये नाम किस प्रकार अपना तमाशा दिखाते हैं। कभी यह बड़ी पुस्तकों के आकार में अपना रूप दिखाते हैं, कभी मन्द्र, वृक्ष और पर्वत बन जाते हैं। जो रूप है वह ही नाम है। जो नाम है वह ही रूप है। इन दोनों में कुछ भेद नहीं। केवल प्रगट करने की शैली का अंतर है, इस नाम और रूप के जगत में रहकर नाम की महिमा उपमा से इन्कार करना भारी भूल है। बुद्धिमान पुरुष कभी इस महिमा की अवहेलना नहीं कर सकते।

यह नाम बुरे को भला, भले को बुरा बना देता है। क्यों? कारण यह है कि अपने सिलसिले में वह बुरे या भले ख्याल का रूप मन में क़ायम कर देता है। तुमने कहा महल और महल की सूरत मन में क़ायम होगई। ख्याली तौर पर तुमने महल का नक़शा ख्याली या मन की आँखों से देख लिया। इसी प्रकार जो व्यक्ति बुरे नाम लिया करेगा बुरे भाव मन में बसाता रहेगा और बुरा बन जायगा। क्योंकि अब्बल तो उसका स्वभाव पड़ जायगा।

और स्वभाव होजाने से वह नाम और ख्याल उसके जीवन के अंग बन जायेंगे। दूसरे परस्पर सहयोग, और हमदर्दी के नियम के अनुसार वह नाम और ख्याल अपने-अपने हम जिनसों अथवा परिवार को खेंच-खेंच कर उसके चित्त में बसाते जायेंगे। और वह कुछ का कुछ हो जायगा। इसी प्रकार जो शुभ कामों और अच्छे ख्यालों से सम्बंध रखते हैं, शनः-शनः नेक होते जाते हैं।

बिलकुल इसी नियम के आधीन लोगों को मालिक के नाम को याद करने का उपदेश दिया जाता है। जिसके फलस्वरूप सहज-सहज में मनुष्य नेक बन कर सार तत्व तक रसाई पैदा करले। उदाहरण के रूप में गुरु मुख द्वारा तुमको बताया गया कि मालिक दयासागर है। उसका नाम दयालु है। 'दयालु' नाम का आदर्श गुरु की जुबान से निकलते ही तुम्हारे मन में स्थित होगया। इष्ट का ध्यान मन में आगया, अब जितना तुम नाम का अभ्यास करते जाओगे उसी कदर वह नाम अपने गुणों को तुम में उत्पन्न करता जायगा। तुममें खुद दया का रंग चढ़ता जायगा। तुम अहिंसक बनोगे, तुम सत्य बोलोगे, किसी की खैरात न लोगे न चोरी करोगे और ईश्वर परायण होकर जीवन के प्रयोजन को जो गुरु के बताये हुए नाम में मौजूद है पूरा कर लोगे। तुम्हारा जीवन सुफल हो जायगा।

मालिक का नाम फलदायक उसी समय होता है जब वह गुरु मुख द्वारा प्राप्त होता है। तुम कहोगे हम पुस्तकों के बताये हुए अथवा जो और लोग लेते हैं उसे सुनकर अपना काम बना लेंगे बहुत अच्छा! तुमको इख्त्यार है। पर इससे वह लाभ न मिलेगा।

गुरु बिन माला फेरते गुरु बिन लेते नाम।
गुरु बिन नाम हराम है जाय पूछो वेद पुरान॥

अखिर गुरु से नाम क्यों सीखा जाय ? इसका उत्तर यह है। गुरु ने नाम का साक्षात्कार कर लिया है। ख्याली तौर पर उसके सब गुण उसके चित्त में मौजूद हैं। और वह जब उसके हृदय से निकल कर चेले के हृदय में जायेंगे विशेष प्रकार का प्रभाव पैदा करेंगे। मिसाल के तौर समझो। एक छोटा लड़का है, उसको डराने को तुमने कहा 'हऊआ आगया' लड़का न तो जानता है कि 'हऊआ' क्या है न उसने कभी 'हऊआ' की तसवीर देखी है। पर चूंकि तुम्हारे मन में उसके डराने की नीयत है और भय के संस्कार तुम्हारे हृदय में मौजूद हैं वह परस्पर तुम्हारे मुख से सुनने से बालक के मन में भर जायेंगे और उसको डरायेंगे। इसी प्रकार गुरु में प्रेम है। गुरु में दया भाव है, गुरु के चित्त में ईश्वर का आदर्श अच्छी तरह कायम है। जब वह चेले के उद्धार की नीयत से उसको मालिक का नाम बतावेगा वह अपना असर किये बिना न रह सकेगा। इस वास्ते गुरु की महिमा का गीत गाया जाता है। उसका महत्व है।

कभी-कभी तो केवल गुरमुख द्वारा नाम के सुन लेने ही से मनुष्य के दबे हुए संसकार उभर खड़े होते हैं और कभी महनत भी करनी पड़ती है। पर हर हालत में असर ज़रूर होता है। गुरु पूरा होने की शर्त है, केवल नाम के बता देने से चेले का उद्धार कर देता है। इसमें ज़रा भी शक व शुभा की ज़रूरत नहीं है।

अजामिल कन्नौज का रहने वाला ब्राह्मण था। बुरी संगति के कारण एक चाण्डाल के बश में आगया। रात दिन बदी और बुराई से काम किया करता था। कौन से अवगुण थे जो इस पापी ब्राह्मण ने नहीं किये थे। जूआ वह खेलता था। शराब वह पीता था। चोरी वह करता था। और जब कभी अवकाश पा जाता, दो चार आदमियों के साथ मिलकर लोगों को लूट लिया

करता था। कुछ थोड़ा बहुत लिखा पढ़ा भी था। पर इस पढ़ने ने उसके साथ वह काम किया जो दूध पिलाने से विषैले साँप के साथ होता है। मालिक के नाम से इसको भारी चिढ़ थी। धर्म कर्म से कोसों भागता था। और जिस व्यक्ति को कथा वार्ता और सत्संग का प्रेमी पाता उसकी हंसी दिल्लगी करता।

एक दिन वह कहीं बाहर गया हुआ था। संध्या समय कुछ साधू उस मोहल्ले से गुज़रे जहां अजामिल रहता था। आकाश पर बादल छाये हुए थे। साधुओं ने लोगों से पूछा कि रात के ठहरने के लिये कोई स्थान मिल जाय। कुछ युवक जो अजामिल के मिलने जुलने वालों में से थे हंसी दिल्लगी में साधुओं को अजामिल का घर बता दिया। महाराज इस मोहल्ले में एक ब्राह्मण रहता है। यदि आप उसके घर जाँय तो शायद रहने को जगह मिल जाय। साधू भोले भाले क्या जानते थे कि वह लुटेरे के घर भेजे जारहे हैं। पर मालिक की दया से बुराई करने का भी परिणाम भलाई में बदल जाता है। साधू उसके मकान पर गये। मालूम हुआ अजामिल कहीं बाहर गया है। बैठक खाली थी। साधुओं ने भक्त का स्थान समझ कर निश्चिन्त अपने आसन जमा दिये। नन्हीं बूंदें गिर रही थीं। खाने पीने का कोई इन्तज़ाम नहीं पर यह मंडली मस्त थी। कुछ इसकी चिन्ता नहीं थी कि कोई खाना पीना ही दे। दीपक जला भगवत नाम की आराधना करने लगे। और कथा कीर्तन में ऐसे लवलीन होगये कि तन बदन का होश न रहा। या तो डर के मारे कोई आदमी अजामिल के घर आता नहीं था या जिस समय गाना बजाना शुरु हुआ सारे मोहल्ले के मनुष्य वहाँ टूट पड़े। और साधुओं के कीर्तन में अमृत पान करने लगे। एक ओर साधू खुद भगवान के स्मरण भजन में लौलीन थे दूसरी ओर मोहल्ले वाले भी

अपना घरबार भूल बैठे। बेसुधी और चित्त की स्थिरता का ऐसा चित्र खिंच गया कि जो कोई वहां आया वह ही उसके प्रभाव से बेसुध होता गया। यह लीला घंटों रही।

आधी रात के समय अजामिल अपनी स्त्री को साथ लिये हुए आया। दूर से गाने बजाने की आवाज़ सुनी। मन में क्रोधित हुआ। पूछा यहाँ कौन लोग आये हैं। किसी ने उत्तर दिया आज तेरे घर को साधुओं ने पवित्र कर दिया। इन शब्दों में ईश्वर जाने क्या जादू है। चित्त बड़ा व्याकुल होगया।

अनहोनी प्रभु कर सकें होना देंय मिटाय।
तुलसी ऐसे राम ते काहू को न बस्याय॥

क्रोधाग्नि प्रेम प्रभाव से पिघल कर ठंडी पड़ गई। ईश्वर की महिमा? चांडाल के घर आकर ऐसा कीर्तन हो! क्या मामला है? इस तरह ख्याल करता हुआ वह आगे बढ़ा। गाने की आवाज़ सुनाई दी।

टेक-भजो सदा हरि नाम संतो भजो सदा हरि नाम।
जाकी पूंजी साँस है छण आवे छण जाय।
ताको ऐसा चाहिये रहे नाम लौ लाय॥ संतों
नींद निशानी मौत की उठ कबीरा जाग।
और रसायन छांड़ कर तू नाम रसायन लाग॥ संतों
नाम जो रत्ती एक है पाप जो रत्ती हज़ार।
आधि रत्ति घट संचरे जार करे सब छार॥ संतो
सत्त नाम के सुमरिते उधरे पतित अनेक।
कह कबीर नहीं छांड़िये सत्त नाम की टेक॥ संतो
नाम जपत कोढ़ी भला चुइ चुइ पड़ै जो चाम।
कंचन देह किस काम की जा मुख नाहैं नाम॥ संतो
जाकी गाँठी नाम है ताके हैं सब ऋद्धि।
कर जोड़े ठाड़ी रहें सकल सिद्धि नौ निद्धि॥ संतो

ख्याल ने मज़बूती के साथ अपना मंडल बना लिया। ऐसा चमत्कार होगया कि सब अपनी सुध भूल गये। अजामिल के चित्त पर भजन की एक एक कड़ी ने वह प्रभाव डाला जो हथौड़ा लकड़ी के साथ करता है। भीतर ही भीतर चित्त चूर चूर होगया। अपने अवगुणों की ओर ध्यान गया। हाय! हाय! मेरी आयु यों ही नष्ट-भ्रष्ट हुई! न किया मैंने वह कर्म जो आज काम आता। ब्राह्मण कुल में पैदा हुआ और काम किये चांडाल जैसे! रे धूर्त! अब क्यों पछिताता है! हे प्रभो इस करनी का भी कोई ठिकाना है! कैसे मेरी मुक्ति होगी! वह मन में सोचता भी जाता था और भजन भी सुनता जाता था। मन में अन्दर ही अन्दर कुरेद थी। स्त्री को साथ लिये हुए वह अपनी चौपाल पर आया। जिसकी इस पर निगाह गई सब डर गये क्योंकि अजामिल बड़ा ही ऊधमी और निर्दई खूनी आदमी था। पर उसकी दशा कुछ और थी। वह आया और जहाँ भजन हो रहे थे मंडली के महंत के आगे धड़ाम से गिर पड़ा। त्राह मान! त्राह मान!! त्राह मान!!! 'भजन बंद सब चुप' महंत ने पूछा क्या है? उसने कहा भगवन्! यह पापी अजामिल है जिसके घर को आपने पवित्र किया है। वह इस योग्य कब था। वह संसार में ठग डाकू और अत्याचारी मशहूर है। इस नाम से सब थर-थर कांपते हैं। आपने आज कैसे दया की। साधू समझदार और ऐसे मनुष्यों के सुभाव से परिचित था। कहने लगा, कुछ चिन्ता नहीं। मालिक का नाम पापी से पापी को तार देता है। तो शोक न कर। मालिक ने समझ बूझ कर तेरे यहाँ भेजा है। साधु वहाँ कभी नहीं जाते जहाँ इनका अनादर होता है। तू जीवित वीर पुरुष है और साधू तेरे जैसों के उद्धार के ही लिये हैं।

साधु सिंह का एक मत जीवित ही को खाँय।
भाव हीन मृतक दशा ताके निकट न जाँय॥

इन शब्दों ने अजामिल के दिल पर और चोट की। वह जोर से साधू का पांव पकड़ कर रोने लगा। इसकी स्त्री भी रोती रही। उसने पूछा क्या मेरा भी उद्धार हो सकता है? हाँ, यह बोला सिर पर हज़ारों मन के पाप का बोझ है। उसने कहा जिस प्रकार अग्नि की एक चिनगारी सूखी घास के ढेर को दम के दम में जला कर भस्म कर देती है, वैसे ही भगवान् का नाम पाप को भस्म कर देता है। उसने पूछा, मेरा मन मलीन है वह नाम कब जपने लगा। साधू ने कहा, मलीनता जाती रही, तेरा भाग उदय हुआ है। शुभ कर्म जो तूने किसी जन्म में किये होंगे आज उदय होने पर आगये। तुझको मालिक का नाम प्राप्त होगा। और तुझको सद्गति मिलेगी। हे अजामिल! जिस 'नाम' ने बालमीकि को लुटेरे से ऋषि बना दिया वह ही नाम तुझको मालिक का सच्चा भक्त बना देगा। इसने कहा मेरा हृदय कठोर है। साधू बोला, नाम का हथोड़ा इसको कूट-कूट कर मौम बना देगा। और इसके अन्दर मालिक की मूर्ति के अक्स खिंच जाँयगे। शोक न कर, 'नाम' में बड़ी शक्ति है।

देखने वाले चकित! यह क्या बात है, क्या करामात है, यह हो क्या रहा है। अजामिल और यह दशा! लोगों को धोखा हुआ। गौर से सूरत देखी, आवाज़ सुनी, अरे यह तो सचमुच अजामिल ही है! मालिक की लीला अपरम्पार है! जो चाहे पल में कर दिखाये। "पर्वत को राई करे, राई पर्वत मान"।

बातचीत करते हुए आधी रात बीत गई। इसकी स्त्री को होश आया कहने लगी साधुओं ने भोग भी लगाया है या नहीं!

लोगों को अब जाकर ध्यान आया। कहने लगे किसी को यह चेत नहीं हुआ था। साधू बोले क्या हर्ज है। आज भगवान की मौज ऐसी ही थी। रात इसी तरह भजन भाव में कट जायगी। प्रातः ही साधू किसी ओर को चले जायेंगे। साधुओं को खाने पीने का इतना ख़याल भी नहीं रहता। अजामिल पर दूसरा कोड़ा लगा। दिल तड़प गया। हाय! घर पर साधू आवें और यों ही भूखे रह जांय! रे अपराधी अजामिल! तेरे घर के सिवाय और ऐसी बातें कहां सुनने को मिलेंगी!

साधु आवत देख कर मन में हृदय मरोर।
सो तो होगा चूहड़ा बसे गाँव की ओर॥
खाली साध न भेंटिये सुन लीजे सब कोय।
कहें कबीरा भेट धर जो तेरे घर होय।

दोनों स्त्री पुरुषों ने घर का द्वार खोला। स्त्री ने कहा जाओ बाजार से पेड़े और दही ले आओ। इस समय खाना बनाने में साधुओं को कष्ट होगा। और वह नंगे सिर और नंगे पैरों गया दुकानें बंद थीं। बड़ी ख़ातिर खुशामद से दुकान खुलवाई। दुकानदार हैरान! आज अजामिल कैसे ऐसी नम्रता और प्रेम से बातें करता है! वह मिठाई और दही बाज़ार से लाया। साधुओं के पास रक्खा। भगवान इसको भोग लगाइये और अजामिल को अपनी शरणागत समझिये। कुसमय खाना मंजूर नहीं था एक साधू ने मने किया। अजामिल ने हाथ जोड़ कर विनय की। यदि इसका भोग नहीं लगा तो आज ही रात को अजामिल की मौत का दृश्य दुनिया देखेगी! जिस तरह आपने मेरी आंखे खोली हैं इसी दृष्टि से इस भोग को भी लगाइये। और मुझको अपने चरणों में लीजिये। महंत ने उसकी बात मान ली। भोग लगाया गया सब ने खुश होकर खाया। भजन सुनने

वाले घर नहीं गये थे। उनको साधूओं के सतसंग में कुछ ऐसा रस आया था कि उनका जी जाने को नहीं चाहता था! महंत ने सब आदमियों को परशाद बाँटा। और सब से कहा तुम सब लोग अजामिल के उद्धार की मालिक से प्रार्थना करो।

सारी रैन भजन भाव में बीती। प्रातः हीं साधू चलने को तैयार हुए। अजामिल ने रो रो कर कहा मेरा भी उद्धार करते जाइये। और महंत ने उसको कहा तू सदा 'नारायण' 'नारायण' का मंत्र जपा कर इससे तेरा उद्धार होगा और जब तेरे घर में पुत्र पैदा होगा उसका नाम भी 'नारायण' रखना।

अजामिल की लालसा थी कि साधू एक दो दिन और ठहरें पर वह न ठहरे, अजामिल को मामूली नाम का उपदेश देकर चले गये।

नाम के प्रताप से, महातम से, इसका जीवन पलट गया। उलट गया। उल्टे नाम की गति प्राप्त हुई। रोज़ रोज़ इसके जीवन में परिवर्तन होने लगा। अब न लूट पाट से काम न मारधाड़ से मतलब। लुटेरा कुछ का कुछ बन गया। हर समय उसकी जिभ्या पर मालिक का नाम रहता था। जो लोग डरते थे अब उसके साथ प्रेम और प्यार का व्यवहार करने लगे वह भक्ति का पात्र बन गया। सारे अवगुण एक एक करके निकल गये। कबीर साहब ने सत्य कहा है:—

जहाँ बाज बासा करे पंछी रहे न कोय।
जिस घट प्रेम प्रगट भया पाप रहे ना कोय॥
मन पछी जब लग उड़े विषे वासना मांह।
प्रेम बाज की झपट में जब लग आया नांह॥

जीवन सुधर गया। अजामिल कुछ का कुछ होगया। इसके घर लड़का पैदा हुआ उसका उसने नाम 'नरायण' रक्खा और प्रेम से उसको पालने लगा।

जिस समय उसकी आयु अधिक हुई वह बीमार पड़ गया। पर मन में शांति थी। बेचैनी जो मरते समय लोगों में नज़र आती है उसमें नहीं थी। आखिर में अंत समय आपहुंचा। आंखें बन्द थीं। जिभ्या से हर समय 'नारायण' 'नारायण' का नाम निकलता था। जिनको साधुओं से इसके दीक्षित होने का हाल मालूम था वे जानते थे मालिक के नाम का सुमिरन कर रहा है। अन्य संसारी लोगों को ख्याल था कि इसको अपने पुत्र से अधिक मोह है इसलिये उसका नाम ले रहा है। अंत समय तक बराबर वह मालिक के नाम का स्मरण करता रहा और जब प्राण अंत समय में निकलने लगे उस समय उसने 'नारायण' कहा और आंख ऐसी मूंदीं कि फिर न खोलीं। और इस प्रकार संसार ने बिगड़े हुए जीवन के सुधार का दृश्य नाम के स्मरण के सिलसिले में देखा। धन्य हैं वे पुरुष! जिनको मालिक के नाम से प्रेम है! क्योंकि इन्हीं को उसके सच्चे पुत्र कहे जाने का श्रेय है।

सभी रसायन हम करी नहीं नाम सम कोय।
रंचक मन में संचरे सब तन कंचन होय।
गावंता के मुख बसूं अरु श्रोता के कान।
ज्ञानी के हृदय बसूं भेदी का मैं प्राण।
जब ही नाम हृदय धरा भया पाप का नाश।
जैसे चिंगी आग की पड़ी पुरानी घास॥

—o—

साधु संग की महिमा की कथा

धन्य हैं वह जिनको किसी साधू का संग नसीब होजाय! वह संसार में सचमुच बड़े भाग्यशाली हैं जिनको मालिक के किसी सच्चे भक्त का संग नसीब हो।

कबीर संगत साध की साहब आवें याद।
लेखे में वोही घड़ी बाकी दिन बरबाद।

जिस प्रकार खरबूजे को देख कर खरबूजा रंग पकड़ता है वैसे ही साधू के संग से साधुपन आता है। यह स्वभाव के सुधार, शिष्टाचार के सभ्य बनाने, और आत्मिक उन्नति के मार्ग का सबसे श्रेष्ठ उपाय है। और साथ ही सबसे सरल और सुगम भी है। केवल इतना अवश्य करना पड़ता है कि मन पर अधिकार जमा कर उनके साथ रहना पड़ता है। जहाँ मन स्थिर होगया फिर सहज रीति में सुधार और मन की गढ़त होने लगती है। पर अव्वल तो साधुओं का संग मिलना कठिन है। क्योंकि बिना मालिक की अपार दया के संतों की चरण शरण प्राप्त नहीं होती।

बिन हरि कृपा मिलें नही संता।
संत मिलें फिर दुख का अंता॥

इस पर भी यह मन ऐसे विघ्न मचाता है कि वहाँ ठहरने नहीं देता।

सेवक सेवा में रहे सेव करे दिन रात।
कह कबीर कुसेवका सन्मुख ना ठहरात।

यदि किसी प्रकार इन दोनों बातों का समागम होजाय तो फिर क्या कहना है? जो नमक की खान में गया वह नमक ही बन जाता है। और नमक होते कुछ देर भी नहीं लगती। वह ही स्वभाव, वही गुण, वही रंग रूप उसमें सहज ही पैदा होजाते हैं। न वहाँ यम नियम करने की ज़रूरत है न शम दम के साधन की आवश्यकता है। केवल साधुओं के संग और सेवा में तत्पर रहना आवश्यक है। और इसी से सारा काम बन जाता है।

लाली अपने लाल की जित देखूं तित लाल।
लाली देखन में चली मैं भी होगई लाल।

कहते हैं कि लोहा पारस के लग जाने से कंचन बन जाता है। यह बात बड़े आश्चर्य से कही जाती है। यदि इसको ठीक मान लिया जाय तो पारस लोहे को केवल सोना ही बना देता है पारस नहीं बनाता। पर साधू संग की यह महिमा है कि उनके पास जो जाते हैं साधू बन जाते हैं। साधू अपनी संगति के प्रताप से सतसंग में रहने वालों को इस तरह तबदील कर देते हैं कि वह बिलकुल उसी तरह के बन जाते हैं। इसमें कुछ भी फ़र्क नहीं होता। साधू संग की महिमा वर्णन करना बड़ी कठिन समस्या है। इसकी महिमा कोई भी नहीं कह सकता।

सत संगति महिमा नहीं गोई।
सुन आश्चर्य करे जन कोई॥

मालिक के बसने का मन्द्र बैकुन्ठ पुरी अथवा स्वर्ग लोक नहीं है। मालिक का मन्द्र साधुओं का हृदय है। इस प्रकार जो लोग साधू के संग में रहते हैं वे मानों मालिक के संग में ही रहते हैं।

मन मेरा पंछी भया उड़कर चला अकाश।
स्वर्ग लोक खाली पड़ा साहब सन्तन पास।

इसलिये साधू संग की महिमा कोई क्या वर्णन कर सके! कबीर साहब साधू के दर्शन का फल जिस प्रकार वर्णन करते हैं वह अपने ढंग का विचित्र है! सुनिये वे क्या कहते हैं:—

दर्शन कीजे साध का दिन में कई इक बार।
आसौजा का मेह ज्यों बहुत करे उपकार॥ १ कुआर
कई इक बेर न कर सके तो दोइ बेर करले।
कबीर साधू दरश ते काल दगा नहीं दे॥

दोइ बार ना कर सके तो दिन में कर इक बार।
कबीर साधू दरश ते उतरे भव जल पार॥
एक दिना नहीं कर सके तो दूजे दिन कर लेह।
कबीर साधू दरश ते पावे उत्तम देह॥
दूजे दिन ना कर सके तीजे दिन कर जाय।
कबीर दरशन साध ते मोक्ष मुक्ति फल पाय॥
तीजे चौथे ना करे तो बार बार कर जाय।
या में देर न कीजिये कहें कबीर समझाय॥
बार बार नहीं कर सके तो पक्ष पक्ष करले।
कहें कबीरा भक्त जन जन्म सुफल करले॥
पक्ष पक्ष ना कर सके तो मास मास कर जाय।
या में देर ना लाइबे कहें कबीर समझाय॥
मास मास नहीं कर सके छटे मास अलबत्त।
या में ढील न लाइये कहें कबीर अवगत्त॥
छटे मास नहीं कर सके वर्ष दिना करले।
कह कबीर सो भक्त जन जमे चिनौती दे॥
वर्ष दिना नहीं कर सके ताको लागे दोष।
कहें कबीरा जीव सों कभू न पावे मोक्ष॥

यह साधू के दर्शन का फल है। यह फल तत्काल उसी क्षण मिलता है। और मनुष्य के स्वभाव और शिष्टाचार में परिवर्तन होने लगता है।

साधू के संग से कितने मनुष्यों का उपकार होता है। नारद जो दासी पुत्र थे ऋषि बन गये। रत्नाकर जो जंगल का महा अत्याचारी लुटेरा था बाल्मीकि ऋषि कहलाया। अगस्त, वशिष्ठ ध्रुव किस-किस को कहें कितने तर गये और कितने ओर तरेंगे। ६ भवसागर से पार करने का जहाज़ है।

लो एक रानी की कथा सुनो जो केवल साधू संग से ही मालिक की सच्ची भक्तिनि बन गई थी और अब तक लोग उसके भक्ति भाव की महिमा गाते हैं।

रानी रत्नावलीजी महाराजा माधोसिंह की स्त्री थी, जो राजा मानसिंह अम्बर के राजा का छोटा भाई था। जब यह शादी होकर राजा के घर आई। गृहस्थ के कारोबार को बड़ी खुशी और मुस्तेदी से करती थीं। स्वभाव सीधा सादा, व्यवहार में हद दर्जे की संजीदगी सब लोग उनके शिष्टाचार की प्रशंसा किया करते थे। परमात्मा की कृपा से सुन्दरता भी अच्छी पाई थी। माधोसिंह इनको बहुत चाहता था। पर होने वाली बात! उनके पहले जन्मों के शुभ संस्कार फुरने पर आये। एक स्त्री कहीं से महल में आगई। राजा ने उसको नौकर रख लिया। यह स्त्री बड़ी सरल स्वभाव की थी। साधुवी चित्त की थी। प्रेम से रानी की सेवा करती थी। और जिस काम को हाथ लगाती थी उसको बड़ी सुन्दरता से करती थी। सब लोग उसके व्यवहार और स्वभाव पर मुग्ध थे। दिन भर यह काम काज करती रात को एकांत में बैठकर भगवान का भजन ध्यान करती। भजन गाते समय प्रेम में ऐसी मग्न हो जाती थी कि तन बदन की भी सुध भूल जाती थी। यह उसका नित्य नियम का मामूल था। एक दिन वह जब इस अभ्यास में थी। रानी की उस पर दृष्टि पड़ गई। जब दूसरे दिन वह सेवा टहल करने आई रानी ने उससे पूछा तू रात को क्या करती है? उसने कहा मैं परमेश्वर के गुणानवाद गाया करती हूं और उसके भजन का आनन्द लेती हूँ रानी संस्कारनि और अधिकारणि थी। कहने लगी मुझको भी तू गुणानवाद और भजन का आनन्द लेना सिखा दे। उसने कहा मैं तो आपकी दासी हूँ मुझको यह साहस कहाँ? रानी बोली

इसमें क्या बात है। संसारी नाते रिश्ते और तरह के होते हैं। आज से तू मेरी दासी नहीं, मैं तेरी दासी हूं मुझ पर कृपा कर और वह युक्ति सिखा दे जिस तरह तू प्रेम में मुग्ध होती है। दासी ने रानी को अपने विचार के अनुकूल भक्ति और प्रेम की शिक्षा दी और अपनी पंथाई बनाली। उस दिन से रानी ने न केवल उसको अपनी सेवा टहल से मुक्त कर दी। बल्कि उसको गुरु मान कर उसका आदर सत्कार करने लगी। अब तो यह दशा होगई कि संध्या समय दोनों मिलकर पोथी का पाठ करतीं और भक्ति प्रेम के भजन और गीत गातीं। रानी पर दिनों दिन रंग चढ़ने लगा। और वह अपना रंग लाया, कभी २ यह दशा हो जाती थी कि वह भजन गाते गाते बेसुध होजाती और घटों उसी अवस्था में रहती। भक्त माल के विख्यात और पूज्य कवि लिखते हैं कि स्वप्न अवस्था और समाधि की लौलीनता में इसको मालिक का दर्शन होता था।

चित्त ही तो है! इधर से उधर को पलटा खा गया। उलटे नाम की गति हो गई। एक दिन रानी से उसकी दासी ने कहा कि महल के निकट इस प्रकार का मन्द्र और मकान बनाया जाय जिसमें साधु जन आकर विश्राम करें और हमको उनके दर्शन और सतसंग का फल मिल जाया करे। कहने की देर थी। मकान और मन्द्र बन गये। और उसके सदाव्रत का हाल सुन कर साधू लोग वहाँ आने लगे। और खूब समाज जुड़ने लगा। माधोसिंह अधिकांश देहली में रहता था। राजा मानसिंह की देहली में बड़ी इज्ज़त थी। रानी भी देहली ही में रहती थी। रानी ने उसका रंग ढंग देखा। कहा कुछ नहीं पर यह प्राकृतिक नियम है कि मनुष्य का स्वभाव एक रस नहीं रहता। कभी उन्नति करता है कभी अवनति। रानी में धीरे २ साधू संग के प्रभाव पड़ने शुरू होगये।

अभी तक तो महल से बाहर नहीं जाती थीं। अब जो पमार्थ की चाट लगी तो वह कभी कभी साधुओं के सतसंग में आने जाने लगी। यह बात राजसि परम्परा और शिष्टाचार के विरुद्ध थी। रानी का इस प्रकार साधू संग में जाना दोष युक्त था। एक दो बार राजा ने समझाया। रानी बोली महाराज! न कोई किसी से बड़ा है न छोटा है। राजा प्रजा का व्यवहार। व्यवहार मात्र है। पमार्थ में इस पर दृष्टि नहीं। परदे की रस्म कुछ इतनी अच्छी नहीं। यदि किसी ने देखा तो क्या न देखा तो क्या। मालिक की भक्ति ही जीवन का मुख्य उद्देश्य है। तुम हमको न रोको! राजा इन बातों को सुनकर अति कोधित हुआ। पर रानी बड़ी गम्भीर स्वभाव की थी। उसको कुछ अधिक बुरा भला कहने का साहस नहीं हुआ और चुपचाप बाहर चला गया।

संयोगवश उसी दिन ब्रज भूमि से कुछ साधू रानी के मन्द्र में आये। उसने उनके कथा कीर्तन का हाल सुना। मन में धीरज न बँधा। साधुओं के पास चली गई। उनके सतसंग में शरीक रही। और आज उसने सबको अपने हाथ से भोजन कराया। यह हाल कर्मचारियों ने राजा तक पहुँचाया। वह बड़े असमंजस में पड़ गया। न कुछ कर सकता था न कह सकता था। जब साधुओं को रानी के अपने हाथ से भोजन कराने का हाल कर्मचारी राजा को सुना रहा था ठीक उसी समय उसका पुत्र कुमर प्रेमसिंह जो रतनावली के पेट से था अपने पिता से मिलने आया। रानी ने उसको भी अपने स्वभाव के अनुकूल शिक्षा दी थी। विष्णु के समान ललाट पर तिलक था। गले में कंठी माला पड़ी थी। एक तो उसकी रानी का हाल सुन कर ही क्रोध अग्नि प्रचंड हो रही थी। दूसरे अपने पुत्र का रंग ढंग देख कर उससे न रहा गया। और जिस समय लड़के ने डंडवत प्रणाम दरबारी

नियम के अनुसार राजा को की। राजा ने तिरछी निगाह से उसको देखा। अच्छा मुण्डी के पुत्र ! कहा। और वैसे ही महल में चला गया। राजकुमार ने पूछा महाराज ने आज मुझको मुण्डी का पुत्र क्यों कहा ? लोगों ने उत्तर दिया रानीजी साधुओं के सतसंग में जाती हैं। उनको समाचार मिला है। आप पर अपना क्रोध उतारा है। राजकुमार हँसा ! बहुत अच्छा। यदि हम साधुवी के पुत्र हैं तो बुरा क्या है ? साधू कहलाना तो राजा होने से श्रेष्ठ है। वह बेचारा अपने महल में गया। रानी अभी तक मन्द्र से वापिस नहीं आई थी। साधुओं के सतसंग में थी। उसने उसको ख़त लिखा। माता जी ! आज महाराज ने सरे दरबार सबके सामने मुझको मुण्डी का पुत्र कहा। आवश्यकता इस बात की है कि तुम अब सबको साबित करदो कि तुम मुण्डी हो और मैं तुम्हारा पुत्र हूँ। मृत्यु का कोई समय नहीं है कौन जाने कब आजाय ! किसी का भय व्यर्थ है। जो होगा मालिक की मौज से होगा। मेरी समझ में अब तुम महल में भी न आओ ! साधुवी भेष में ही रहो। साधुओं की सेवा करो और मेरा जन्म सुफल बनाओ। रानी ख़त के पढ़ते ही चित्त में प्रसन्न हो गई ! उसी समय शीष के सारे केश उस्तरा से साफ़ करा दिये। मुण्डी बन गई। पुत्र को लिख दिया, ले आज से मैं मुण्डी बन गई ! और ईश्वर से प्रार्थना करती हूं कि तू सचमुच मुण्डी का पुत्र हो और खुशी से रहो। अब मुझको राज और महल से कोई काम नहीं रहा।

प्रेमसिंह ने ख़त पढ़ कर बड़ी खुशी मनाई। नौकर चाकरों को इनाम इक्राम दिया। साधू और फ़कीरों में खैरात बाँटी। और महल के द्वार पर नौबत झड़ने लगी। माधौसिंह ने लोगों से पूछा प्रेमसिंह को ऐसी क्या खुशी हुई है कि नौबत बज रही है और

इनाम व इक्राम तक़सीम हो रहा है। लोगों ने कहा आपने उनको मुण्डी का पुत्र कहा था। उन्होंने माताजी को मुण्डी हो जाने का आग्रह किया। रानीजी ने सचमुच सर के बाल मुँडवा लिये और मुण्डी बन गईं। उसकी खुशी में यह शादियाने बज रहे हैं। काटो तो लहू नहीं बदन में, माधोसिंह धक सा रह गया। क्रोधातुर हो दाँत चबाने लगा। हिन्दू स्त्रियां पति के जीतेजी सिर के बाल नहीं मुँडवातीं। वह इनके सुहाग का चिन्ह है। उसने सोचा, उसके होते हुए रानी ने अपने को बेवा बना लिया है। और माँ बेटा दोनों ने उसकी हितक, मान हानि की है। हुक्म हुआ प्रेमसिंह को पैरों में बेड़ी डाल कर हाजिर करो? उसको ख़बर मिली तो उसने भी कुछ आदमी लेकर महल के चारों ओर लगा दिये। फिर तो राजा को खुद ही कई सौ आदमियों को साथ लेकर दंड देने को आना पड़ा। वह तो मुक़ाबले को तैयार ही बैठा था। आँखें क्रोध से सुर्ख अंगारा बन रही थीं। बहुत मुमकिन था कि बाप बेटे में लड़ाई छिड़ जाती। अहलकारों ने राजा को समझाया बुझाया यह अच्छा नहीं है। देश में बदअमनी फैल जायगी। बड़ी अवग्या की बात होगी! लोग आपको क्या कहेंगे! प्रजा भी असंतुष्ट होगी। उधर कुछ समझदार आदमी प्रेमसिंह के पास गये और कहा देखो पिता के मुक़ाबले में लड़ना शोभा नहीं देता। ऐसा एक पुत्र के नाते तुमको उचित नहीं। उसने उत्तर दिया। माता का अधिकार पुत्र पर पिता की अपेक्षा हज़ार गुना ज्यादा है। यदि शरीर जाय तो अभी चला जाय। यह क्षणभंगुर है। मरना जीना रोज़ होता है। यदि पिता ही पुत्र से लड़ने को ललकारता है तो वह पुत्र क्षत्री कब है जो ललकारे जाने पीर पीठ दिखाता है। मैं डरता नहीं। जो होना हो अभी होजाय! इतना कह कर उसने जोश

में आकर म्यान से तलवार खींच ली। अहलकारों ने पाँव पकड़ लिये और बड़ी खुशामद और नम्रभाव दर्शाया। उसने कहा यदि यही चाहते हो तो राजा से कहो मेरी तलवार म्यान में अब उस समय जायगी जब राजाजी हथियार उतार कर घर चले जांय! राजा को अखिर सबकी बात माननी पड़ी और देहली से रुख़सत होकर अम्बर चला आया। रानी देहली ही में रही। उस दिन से फिर वह महल में नहीं गई। न राजा से अपना बँधा हुआ खर्च ही मांगा। धर्मशाला में रातदिन रहना और वहाँ ही रातदिन भगवान की आराधना करना।

अमबर पहुँच कर माधौसिंह ने रानी को मारने की युक्ति सोची। चापलोसों ने सलाह दी बदनामी करने वाली स्त्री को मारने में पाप नहीं पर मारे तो कौन मारे! कोई मर्द तो स्त्री पर हाथ चलाने को तैयार न होगा। अंत में उसने एक शेर को पाला। और देहली में लेजाकर रानी की धर्मशाला में भूखे को ऐसे समय में छुड़वा दिया जब वह अकेली थी। रानी अपने प्रेम में मग्न थी। सिंह को देख कर हंसी! और बोली आइये नरसिंह जी महाराज! और देखिये सिंह हाँपता हुआ उसकी ओर चला। सिंह का मुँह खुला हुआ था। रानी ने उसकी ओर दृष्टि करके देखा तो उसके हलक़ में कोई वस्तु अटक रही थी जिसके कारण वह दुखी प्रतीत होता था। उसने बिना किसी शंका और भय के उसके मुख में हाथ डालकर उसको निकाल दिया। फिर तो सिंह खुशी से पूँछ हिलाने लगा और वहीं उसके पास बैठ गया। जिन्होंने यह घटना देखी वह चकित रह गये। और रानी को बड़ी करामात वाली और सिद्धनी समझने लगे। जब सिंह सोगया रानी और उसकी दासी दोनों उठीं दोनों मकान के भीतर कामकाज करने लगीं। लोग सोते हुए सिंह का तमाश

दूर से देख रहे थे। अंत में वह उठा। भूखा तो था ही। माधोसिंह के आदमियों पर झपटा जो रानी को मारने की नीयत से आए थे और कुछ को मार कर खा गया।

माधोसिंह को जो दुर्दशा हुई उसका बयान नहीं किया जा सकता! मन में बड़ा लजाया! समझा यह रत्नावली क्या यह तो दूसरी मीरां प्रगट होगई! उससे अपने अपराध को क्षमा कराने की युक्ति सोचने लगा। पर शर्म की वजह से मौका हाथ नहीं आता था। आखिर एक दिन साहस करके वह धर्मशाला में आया। रानी भजन ध्यान में लौलीन थी। दासी ने कहा राजाजी आये हैं। रानी ने दृष्टि नहीं उठाई। उसने फिर कहा वह आपको नमस्कार कर रहे हैं। वह बोली। कहो परमात्मा को नमस्कार करें मैं तो उसकी तुच्छ दासी हूँ। राजा ने कहा मेरे अपराध क्षमा हों। रानी ने उत्तर दिया यहाँ मालिक के अतिरिक्त मन में किसी का स्थान नहीं रहा। उसकी छवि ही इतनी है कि उसके ही देखने से जी नहीं उकताता न और किसी ओर जाता है। किसी के दोष देखने का अवकाश कहां है। आपने मेरा कोई अपराध नहीं किया न मुझको उसका ख्याल ही है। जो कुछ हुआ मौज से हुआ! उसने फिर विनय की कि कुछ सेवा ली जाय और कुछ जागीर मन्दिर और धर्मशाला से लगा दिया जाय। रानी बोली जिसके मन्दिर और धर्मशाला होंगे वह आप फिक्र कर लेगा। राजा ने समझा रानी आत्मा में लीन होगई है अब उसको इन वाह्य, बाहरी पदार्थों शरीर आदि की सुधि नहीं है और बात भी सच्ची थी।

रानी की भक्ति की चरचा दूर-दूर फैल गई। ठठ के ठठ इसके दर्शन को आने लगे। इसका जीवन सीधा सादा था। शरीर पर केवल एक धोती रहती थी और वह उसी दशा में भजन भाव में लीन रहती थी।

एक दिन की बात है कि राजा मानसिंह और उसका छोटा भाई राजा माधोसिंह जमुना में दोनों नवका पर सैर कर रहे थे। नाव छोटी थी केवल यह ही दो आदमी उस पर बैठे थे। खबर नहीं मल्लाह कोई संग क्यों नहीं लिया था। नाव खेते-खेते यह मंझधार में जा पहुँचे। डांडे संभाल न सके। नाव उलट गई। दोनों डूबने लगे। एक स्त्री जमुना के किनारे नहा रही थी। उनकी दशा देखते ही वह दरिया में कूद पड़ी और दो डूबते हुए मनुष्यों को खेंच कर किनारे पर ले आई। थोड़ी देर तक वह बेहोश रहे। जब होश आया देखा सामने रत्नावली जी खड़ी हैं। दोनों ने हाथ जोड़ कर नमस्कार किया। देवी! देवी तेरी जय हो, तूने आज हमारी प्राण रक्षा की है। रत्नावली जी को कुछ सुध-बुध न थी। वह नहीं जानती थी कि वह दो आदमी कौन हैं? जब अच्छी तरह से देखा मानसिंह और माधोसिंह थे। फिर वैसे ही वह भीगी हुई मन्दिर में चली आई और वहाँ नए वस्त्र पहने।

रानी की बेसुधी की दशा नित्यप्रत्य बढ़ती गई। ज्यों-ज्यों आत्मा ऊँचे लोकों में चढ़ती गई वह शरीर की ओर से बेसुध होती गई। आखिर एक दिन आगया जब उसने इस नाशवान शरीर को त्याग दिया। मिट्टी मिट्टी में मिल गई और ज्योति अपनी ज्योति में जा समाई।

यह इस परम पवित्र और पुनीत जीवन का संक्षेप में इतिहास है जो साध संग के प्रताप से इस महत्व को पहुंची थी।

—:⊙:—

साधू संग की महिमा की दूसरी कथा

संसार में हर व्यक्ति का जीवन विशेष प्रकार का महत्व रखता है। कोई मनुष्य ऐसा नहीं है जो रचना में व्यर्थ उत्पन्न

किया गया हो। जैसे किसी मकान की भींत की एक छोटी से छोटी ईंट की कुछ हैसियत होती है वैसे ही रेत के अणु, मिट्टी के कंकड़ और जंगल के कांटे तक यहाँ किसी न किसी प्रयोजन के लिये बनाये गये हैं। एक साधू बालक भी उतना ही ज़रूरी है जितना एक राजकुमार। इन सब में केवल विरोध के अंग को प्रगट करने में भेद नज़र आता है वरन् वास्तव में सब एक हैं। और तुमको उचित नहीं है कि तुम किसी एक को दूसरे पर तरजीह दो या बड़ा मानो। या एक मुक़ाबिले में दूसरे की अवज्ञा करो। जो वस्तु ज़रूरी है। और वैसे ही आवश्यक है जैसे तुम्हारे शरीर के हाथ, पांव, नख, बाल आदि। यदि तुम हाथ को अच्छा समझ कर पांव की बेक़दरी करोगे तो तुम्हें खाने का उस बारह सिंघे के समान दुख झेलना पड़ेगा जिसको अपने सींगों पर गर्व था। और टांगों को तुच्छ जाना करता था। ठीक वह ही दशा समाज की रचना में ब्राह्मण, क्षत्री, वैश्य, शूद्र आदि की है। वृक्ष में जड़, पींड़, शाखा, छाल, छिलका, गूदा, फूल, पत्ते सब ही तो होते हैं। कोई व्यर्थ नहीं है। सब जरूरी, सब लाभ प्रद हैं। और अपने-अपने स्थान पर सब का महत्व है।

यह एक बात हुई। दूसरी बात जो इससे भिन्न नहीं है। केवल तुम्हारी दृष्टि के ऊंचे करने की नीयत से कही जाती है। वह यह है कि सामाजिक व्यवहार में यदि तुम किसी चांडाल के लड़के को मैली कुचैली हालत में देखो तो नाक भौं न सकोड़ो। वह भी चेतन्य की मूर्ति है। और उसमें वह सब मन मस्तिष्क की शक्तियाँ मौजूद हैं जो एक मनुष्य को आवश्यक हैं। उसमें ख्यालात और भावों का भंडार है। उसमें संसार के मिटाने अथवा उसके नियम में चलाने की अपार शक्ति है। शक्ति मौजूद है। पर हाँ, राख के नीचे दबी हुई आग के समान वह दबी हुई

हैं। कौन जाने किस अवसर पर माफिक़ सामग्री पाकर भड़क उठे। और संसार को आश्चर्य चकित करदे। प्रकृति में बेजा तमीज़ की, विवेक की गुंजाइश नहीं है। जिसमें तेजी होगी, फुर्ती होगी वह आगे बढ़ेगा। जिसमें उन्नति और उत्थान के संस्कार होंगे वह स्वयं नीची अवस्था से उठ कर ऊंची पदवी को पालेगा। हज़ार जाति पांति का बखेड़ा मचाया जाय विश्व को उसका लोहा मानना पड़ेगा। और अहंकार का सिर नीचे झुक कर उसके पांवों में पड़ जायगा।

नीच नीच सब तर गये संत चरण लौलीन।
जाति के अभिमान में डूबे सकल कुलीन॥
जाति न पूछो साधु की पूछ लीजिये ज्ञान।
काम पड़े तलवार सों पड़ा रहन दो म्यान॥
उत्तम विद्या लीजिये यद्यपि नीच पै होय।
पड़े अपावन ठौर में कंचन तजत न कोय॥

मैं जब कभी शहर के गली कूंचों में होकर जाता हूं, खेलते हुए छोटी जाति के बालकों को देख कर कभी-कभी एक घड़ी के लिये ठहर जाता हूँ। इनमें से कुछ के ललाट पर तेज का प्रकाश चमकता नज़र आता है। मौजूदा हालत इनके अनुकूल नहीं। कुदरत ने प्रकृति ने किसी कारण इनको भी नीचे की श्रेणी में रक्खा है। यदि कहीं इनको शिक्षा मिलती। उसके साधन व अभ्यास का अवसर हाथ आजाता, तो यह क्या कुछ न करके दिखा देते। हज़ारों लाखों और करोड़ों हिन्दू बालक दरिद्री, दीन और दुखी होने के कारण शिक्षा के लाभ से सफलता प्राप्त करने का अवसर नहीं उठा पाते! वरन् सम्भव है कि इनमें से ही कुछ मनुष्य संसार के मोक्ष दिलाने वाले बन जाँय!

उन्नति ऊंची जाति का ही उत्तरदायित्व नहीं है। सब आत्मा हैं। सब में आत्मा का तेज है। सब सत चित आनन्द

की पूर्ति हैं। यथा योग्य सामान न मिलने के कारण वे बेबसी और दीन अवस्था में पड़ी हैं। पर कोई नहीं कह सकता कि वह कब उभर खड़ी हों और कब संसार को अपनी अपार गुप्त शक्ति का तमाशा दिखाकर चकित कर दें! इसलिये दूसरी बात जो तुम्हारे दृष्टि गोचर अथवा हृदयांकित कराना चाहता हूँ वह यह है कि तुम किसी दशा में किसी की अवज्ञा या अवहेलना न करो, निरादर न करो।

"ज़र्रे का भी चमकेगा सितारा। क़ायम जो ज़मीनो आस्मां हैं।"

परिवर्तन के नियम ने पल-पल अपना प्रभाव डाल रक्खा है। प्रकृति माता का चक्र हर समय घूमता रहता है। हिंडोला कभी ऊपर जाता है कभी नीचे आता है। जहां सागर आज लहरें मार रहा है कल वहाँ हिमालय के समान पर्वत की चोटियाँ आकाश से बातें करेंगी। आज जो स्थान तुमको नीचा गहरा और अंधेरा जान पड़ता है, कल सम्भव है पृथ्वी के नीचे दबी हुई गुप्त अग्नि इसको उभार कर ज्वालामुखी पहाड़ बना दे। वैसी ही मनुष्य क गुप्त अंतरी भावों की दशा है। इस कारण मैं तुम से कहूँगा कि तुम किसी मनुष्य का निरादर न करो।

मनुष्य किस प्रकार नीची श्रेणी से उच्च कोटि के जीने पर चढ़ जाता है? यह एक ऐसा विषय है जिसके उदाहरण तुमको नित्यप्रति देखने को मिलते हैं। कंगाल धनी बनते हैं। अपमानित मान की दृष्टि से देखे जाते हैं। जो अपाहिज हैं तेजी और चुस्ती से काम करने लगते हैं। पर तुम्हारे जाति इतिहास से एक अति प्रभावशाली और महत्व का उदाहरण तुम्हारे दृष्टि गोचर करना चाहता हूं, कि किस प्रकार एक भील पुत्र जो अपने समय का अति भयानक लुटेरा था। जिसने अनेक अनगिनित मनुष्यों को मार डाला था। सतसंग के प्रताप से महर्षि होगया और वह

साधारण श्रेणी का ऋषि भी नहीं रहा। ऋषियों में सर्व श्रेष्ठ। संस्कृत भाषा का आदि कवि। प्रथम कवि। और हिन्दू जाति के सन्मुख उन्नति के तमाम इष्ट आदर्श और चित्र प्रगट करने वाला हुआ है। वह कवि था। सबसे प्रथम उसने कविता की नींव डाली थी। यों तो कहने के लिये हमारे यहाँ सिवाय पद्य के कोई प्राचीन पुस्तक नहीं है। वेद तक पद्यों के संग्रह हैं। पर इनकी कविता से यहाँ अभिप्राय नहीं है। कविता से हमारा प्रयोजन यहाँ पर इस पद्य से है जिसमें मानुषी वाणी में, साधारण बोल चाल में, मानुषी सूक्ष्म और पवित्र विचारों को प्रगट करने की शैली अपनाई जाय। इस दृष्टि से वह हमारी जाति का प्रथम कवि माने जाने योग्य है। वह राजनीतिज्ञ भी था। क्योंकि राजनीति के कोई अंग नहीं जिसकी इस अनुपम वाणी में, काव्य में विवेचना न की गई हो। विवेचना करने का शब्द ही क्यों प्रगट किया जाय? इसने तो राजनीति और उसके उदाहरण के जीते जागते चित्र दिखाने का यत्न किया है। वह सामाजिक शिष्टाचार का महान वेता और ज्ञाता हुआ है। और अपनी पुस्तक में वह अनेक वीर और वीरांगनाओं के चरित्र दर्शाते हुए दिखाता है कि हमको माता पिता भाई बन्धु जाति देश के साथ किस तरह व्यवहार करना चाहिये। यह सब कुछ है। पर इसने इसके अतिरिक्त इस महान आदर्श को भी सदा अपनी निगाह के सामने रक्खा है जो हिन्दू जाति का आधार और इष्ट है, और वह धर्म है। धर्म के सब अंग प्रति अंग उसकी पुस्तक में आ जाते हैं। और इसलिये हमको शायद कोई पुरुष ग़लती का दोषी न बनावेगा यदि हम यह कहें कि उसकी पुस्तक में आत्मिक, सामाजिक, शारीरिक उन्नति के सब वसीले और उनकी पूर्ण हालतों के जीते जागते चित्र चलते फिरते हुए नज़र आते हैं।

इसमें सभ्यता और शिष्टाचार की रीति है। इसमें अध्यात्म विषय और निज रूप, सार तत्व का हाल है। इसमें जाति का इतिहास है। इसमें आचार विचार की व्याख्या है। इसमें राज दरबार के हालात हैं। इसमें स्वर्ग नर्क की कथा है। कहाँ तक कहें इसमें सब कुछ है। और वह मस्तिष्क दिमाग़ विचित्र रहा होगा जिसने निहायत ही अद्भुत ढंग में इन सब चीजों को इकट्ठा करने और मौके मौके पर इनका तमाशा दिखाने का परिश्रम किया है। इसकी पुस्तक अपनी हैसियत में संसार में सबसे पहली और सबसे निराली किताब है। जिसमें शब्दों की तसवीरों में सार रूप को लेखनी द्वारा दर्शाने का इन्तज़ाम सोचा गया था।

यह पुरुष रामायण का अमर कविराज बाल्मीक ऋषि है। यह पूज्य और माननीय पुरुष जाति का भील और जंगल का रहने वाला था। हमको बड़ा आश्चर्य होता है जब हम देखते हैं कि सूर्य वंश के राजाओं का भीलों के साथ हमेशा से एक विशेष प्रकार का सम्बंध रहा हैं। और वह अब भी मौजूद है। ऋषि बाल्मीक यदि महाराज रामचन्द्रजी के जीवन के हालात को लिखने वाले और उनके पुत्र लव कुश को पालने वाले थे। तो बापा रावल का तिलक करने वाले और शत्रुओं के हाथ से उनकी जान बचाने वाले भील ही थे। राजपूतों में से सब ने उदयपुर वालों का संग नहीं दिया। पर भील हमेशा ढाल बनकर उनकी रक्षा करते रहे। इसी एक बात से न समझलो कि महाराणा उदयपुर के पाँव के अंगूठे से हिन्दू राजाओं के माथे पर तिलक लगाया जाता है। पर इन महाराणाओं की राजगद्दी के समय जो पुरुष जंगल से आकर उनको राजगद्दी पर बैठाता और उनका तिलक करता है वह भीलों का जंगली सरदार भील

होता है। महाराणा उदयपुर सीधे महाराज रामचन्द्रजी के कुल से हैं। इसी कारण हमको यहाँ, विषय को छोड़कर, भीलों के साथ उनके सम्बंध को जताने की ज़रूरत हुई। बाल्मीक जाति के भील थे। धार्मिक पुस्तकें इनको अगस्त, वशिष्ठ और मित्रा वरुण के कुल से बताती हैं। और यह कहती हैं कि बालपन में इनको एक भीलनी उठा लेगई थी और उसने पालन पोषण किया था। यह बात सही भी है और ग़लत भी है। सही इस वजह से है कि अध्यात्म विद्या की शिक्षा और दीक्षा लेने के नाते एक शिष्य की दृष्टि से वह ऋषि कुल में दाखिल और शामिल कर लिये गये थे। और ग़लत इस वजह से है कि उनका जन्म सच-मुच भील के घर में हुआ था। इसलिये हिन्दुओं की पुस्तकों में जहाँ किसी महात्मा की असलियत पर परदा डालने की कोशिश का सामान देखें, वहाँ यह समझलें कि जहाँ कहीं इन महात्माओं की कुली ऋषियों और ब्राह्मणों से मिलाई गई है, वहाँ आत्मिक सम्बंध और गुरु शिष्य प्रणाली का सम्बंध है। और तुम यदि इस इतिहास को गहरी दृष्टि से जिज्ञासु बन कर छानबीन करोगे तो वह बड़ी सफ़ाई के साथ, स्पष्ट रूप में, तुमको असल हाल बता देगा और असलियत को न छिपावेगा।

बाल्मीक भील थे। इनका नाम रत्नाकर था। शरीर के बलिष्ट, भारी भड़कम और हद दर्जे के काले कलूटे थे। नेत्र चमकीले, स्वभाव चुस्त चालाक और इस विद्या को खूब जानते थे जो भीलों को दी जाती थी। तीरंदाजी की विद्या में कमाल था। दौड़ने में बड़े दक्ष थे। वृक्ष पर चढ़कर उस पर ऐसे चिपक जाते थे कि किसी को उस समय उनके वहाँ होने का शान व गुमान या संशय तक नहीं होता था। यह सब गुण उनमें बालपन से मौजूद ही थे। पर साथ ही एक बड़े महत्व का गुण भी था।

झूँठ नहीं बोलते थे। यदि अब भी कहीं तुमको भीलों के साथ रहने का अवकाश मिलजाय तो तुम देखोगे कि आम तौर पर भील हिन्दुस्तान की तमाम जातियों में सबसे अधिक सच्चे और ईमानदार होते हैं।

जब युवा अवस्था हुई इनका विवाह एक भीलने के साथ रचा गया। इससे कोई सन्तान हुई या नहीं इसका हमको पता नहीं है। लूटमार की तालीम इनको बालकपन से ही मिली थी। पर विवाह के बाद इस घोर निकृष्ट और घृणात्मक पेशे की ओर तन मन से लग गये। जो मनुष्य इक्का दुक्का इनकी तरफ़ से निकलता वह इनके हाथों से जीता नहीं जाने पाता था। हाथ में तीर कमान लिये या तो वे किसी ग़ार में छिप रहते थे या किसी वृक्ष पर चढ़ जाते थे। जहां कहीं कोई उधर से आनिकला समझो उसकी मृत्यु आगई। या तो सनसनाते तीर ने शीघ्र ही उसका काम तमाम कर दिया या यदि कोई बूढ़ा, स्त्री या बच्चा हो तो उसका माल लूट लिया और छोड़ दिया। बाल्मीक शायद इससे नावाकिफ न रहे होंगे कि बूढ़े, बालक और स्त्री पर हाथ उठाना मना है। इस प्रकार उन्होंने बहुत आदमियों की जानें लीं और हज़ारों के माल असबाब छीन लिये। और उसी के सहारे अपने परिवार का पालन करने लगे। जहां जिस जंगल में यह रहते थे वह हद दर्जे का बदनाम था। लोग उधर जाने से डरते थे। और जो गया उसके जान व माल की खैरियत नहीं रहती थी। रत्नाकर का नाम ही काल की गिनती में गिना जाता था। और इसमें संदेह नहीं कि उसका नाम सुनकर ही लोग काँपते थे।

पर जहां रत्नाकर में बुराइयाँ थीं वहाँ भलाइयां भी बहुत थीं। उसके चित्त में हद दर्जे की स्थिरता थी। वह स्वाभाविक ही समाहित चित्तवृत्ति साथ लेकर संसार में आया था।

परमात्मा को मंजूर हुआ कि यह तेज़ रफ्तार घोड़ा नादानी से ग़लत राह की ओर जारहा है। उसकी बागडोर मोड़ दी जाय जो वह सीधे रास्ते पर डाल दिया जाय। तबीयत यदि रङ्गीन है तो पलटा खाने पर वह अपना रंग दूसरे ढंग में भी दिखा जाती है। और यदि योंही है तो जैसे इधर थी वैसे ही उधर भी रहेगी।

नारद ऋषि ने कहीं इस रत्नाकर का हाल सुन पाया। बहुत आदमियों ने उनसे शिकायत की, उनको दया आई। और रत्नाकर के सुधार के हेतु जंगल की ओर चले।

धार्मिक कहावतें इसको और तरह बयान करती हैं। वह कहती हैं कि नारद एक समय स्वर्ग में गये। वहाँ राम लक्ष्मण और सीता के चरित्र को देख इनको विचार हुआ यदि कहीं यह चरित्र मनुष्य की भाषा में वर्णन किया जाय तो इससे बहुत से मनुष्यों के जीवन का सुधार हो जायगा, उन्होंने ध्यान लगाकर देखा। रत्नाकर इस काम के लिये अधिक योग्य नज़र आया। और इस विचार से उन्होंने इसके पास आना अच्छा समझा। यह कथा राम के औतार के रूप में प्रगट होने से साठ हज़ार वर्ष पहले की बताई जाती है। यह सही है या ग़लत है, इस पर बहस करना व्यर्थ है। सम्भव है यह कल्पित हो। सम्भव है यह ठीक हो। पर हम इतना बिना कहे नहीं रह सकते कि जो कुछ होता है पहले इसका इज़हार सूक्ष्म रीति से हो रहता है। और तब वह स्थूल में आकर प्रकट होता है। जैसे तुम्हारे मन में कोई ख्याल आज आया। सम्भव है वह विचार कोई बड़े मकान के बनाने का हो। पर उसका सूक्ष्म और ख्याली नक़शा दिमाग़ में क़ाइम हो गया। और उसके तमाम द्वार, दीवार, खिड़की, किवाड़, बाग़ फुव्वारे आदि सब मौजूद हैं।

यह इमारत सम्भव है पचास वर्ष बाद बनाई जाय, पर दिमाग़ के सूक्ष्म भाग में इसकी हस्ती से इन्कार कोई नासमझ ही करेगा। अब यदि किसी को किसी के दिमाग़ में घुसने की शक्ति है, और साथ ही दिव्य दृष्टि अथवा सूक्ष्म आंखें भी मौजूद हैं, तो इस इमारत के पूर्ण चित्र को वहां देख सकेगा। जिसकी दृष्टि ऐसी नहीं बनी वह देखना तो दूर रहा समझ भी नहीं सकता। और वह उसको असम्भव बता देगा। इसलिये नारद ने अपने मस्तिष्क के चिदाकाश में राम के चरित्र को देखा होगा। कोई आश्चर्य की बात नहीं, साठ हज़ार वर्ष पहले देखना कोई ताज्जुब की बात नहीं है। त्रिकालज्ञ योगी क्या नहीं जान सकते। यह जगत भी ईश्वर का शंकल्प मात्र है। शंकल्प में जो कुछ होने वाला है, मौजूद है। योगी के लिये इसका अनुभव कठिन नहीं है। पर यदि तुम इसको ग़लत मानते और ग़लत कहते हो तो हम भी तुम्हारी दृष्टि से इसको ग़लत मिथ्या और असम्भव कह देंगे। और तर्क कुतर्क के लिये तैयार न होंगे। सारांश यह है कि यह विषय केवल जिज्ञासु जनों और आध्यात्म में रुचि रखने वालों के लिये है। जन साधारण को इसकी ओर ध्यान दिलाना भी हमारा ध्येय या प्रयोजन नहीं है। और हम फिर अब अपने विषय पर आते हैं।

नारद हाथ में बीणा लिये हुए, हरि के गुण गान करते हुए जंगल की ओर जा निकले। सारा जंगल उनके बीणा की झनकार से गूँज उठा।

जय भक्त वत्सल नाथ, करुणा पुँज जय धरनी धरम।
जय कमल नयन कृपाल रूप अनूप जय जय सत गुरम॥
कोई जाने माया तेरी क्योंकर नेति-नेति अगम कहें।
तेरा नाम गावें भक्त निसदिन परम सुख आनन्द लहें॥

पतित पावन भय नसावन भगत मन भावन प्रभो।
संशय मिटावन नाम तेरो जय सदा जय सत गुरो॥

वीणा हाथ में बज रही है, जिभ्या पर भगवान की स्तुति है, पशु पक्षी बन पर्वत वृक्ष सब आश्चर्य चकित हैं। जंगल में भगवान की करुणा का मेघ उनकी दया से बरस रहा है। सारा धरातल इससे तराबोर होगया। जब वह इस प्रकार हरि के गुणानवाद गाते हुए उस वृक्ष के आगे की तरफ़ बढ़े जिस पर रत्नाकर छिपा हुआ चढ़ा था। वह झपट कर जल्दी से नीचे उतर आया। पाप ने उसे निंदयी बना रक्खा था। इस पर नारद की वाणी का स्वाभाविक ही कम प्रभाव हुआ होगा। पीछे से आवाज़ आई। ठहर जाओ, जो कुछ पास है दे दो! वरन् जान की खैरियत नहीं है। बीन की आवाज़ बन्द। राग रागनी सब बन्द, नारद ने फिर कर देखा रत्नाकर चला आरहा है। क़हक़हा मारकर हंसे। जो चीज़ जिसके पास होती है। वह ही वह दूसरे को देता है, में आज तुझको वह अमूल्य वस्तु दूंगा जिससे रत्न की खानि ही बन जायगा।

वह बोला हंसी मज़ाक़ कहीं और जगह करना। यहां तो जो कुछ पास है झटपट धर दो। वरन् जान की खैर नहीं है।

नारद मुस्कराये। पूछा तू पहले यह तो बता तू है कौन? जो ऐसी धमकी देरहा है! मुझको कोई मार नही सकता। मुझको किसी का भय नहीं है। ज़रा मुझे अपना हाल सुनादे फिर मैं तुझसे और बात करूं।

रत्नाकर कुछ सहम गया। छोटे क़द का मनुष्य, शरीर का कमज़ोर और मुझ से इस तरह निडर होकर बात करे! उसने कड़क कर कहा तूने अब तक रत्नाकर का नाम नहीं सुना। पथिक मेरे नाम से काँपते हैं। योधाओं का दिल मेरे डर के मारे

पानी पानी होजाता है। ले जल्दी कर बातें न बना। वरन् तू जानता है अभी काम तमाम कर दूंगा।

नारद के नेत्र बिजली के समान तेज से चमक उठे। वह व्यक्ति जिससे दुनिया डरती थी। मन में कुछ कुछ भय करने लगा। नारद बोले नादान ! तू जानता है तूने कितना पाप किया है। किस कदर पाप का बोझ तेरे सिर पर है। क्यों तू और बोझ अपने सिर पर लादता जारहा है आखिर तेने यह पेशा क्यों इख्त्यार कर रक्खा है।

रत्नाकर फिर साहस करके बोला। ला ! ला ! जो कुछ है रखदे। यह ज्ञान उससे छांटना जो ज्ञानी हो। मैं तो यह ही पेशा करता हूं।

नारद ने अबकी बार थोड़ी प्रेम भरी दृष्टि डाली और बोले भाई ! अपना हाल तो कुछ सुना ?

अमी हलाहल मधु भरे श्याम सेत रत्नार।
जियत मरत झुक-झुक परत जो चितवत इकबार।

आखिर वह अपना हाल सुनाने को विवश हुआ। मेरे माता पिता बूढ़े हैं, मेरी स्त्री है, पुत्र हैं। इनका पालन पोषण करना मेरा धर्म है। मैं इनको न पालूं तो फिर कौन पाले, मैं इस पेशे से इनकी परवरिश करता हूँ।

नारद बोले अच्छा मेरा कहना मान तो जा। इन सबसे पूछ तो आ। कि वह तेरे पाप के भी भागी होंगे या नहीं। उस समय तू जो कुछ कहेगा मैं करूंगा।

रत्नाकर के दिल में ऋषि की आकर्षण शक्ति चुम्बक के समान अपना असर प्रभाव डाल रही थी। वह राजी होगया और बोला मैं जब तक पूछ कर आऊं तुम यहां ही खड़े रहना मैं जल्दी ही लौट कर आता हूँ।

नारद ने हंस कर कहा जा मैं यहाँ ही खड़ा हूं। रत्नाकर घर आया, पिता ने पूछा आज इतनी जल्दी क्यों आ गया। उसने उत्तर दिया आज एक साधु मिला है। उसने मुझको उपदेश दिया कि पिता से पूछ आ, मैं जो पाप करता हूं उसमें तू भी शरीक है या नहीं।

पिता ने उत्तर दिया कोई किसी के कर्म का साथी नहीं। जिसका पाप उसका बाप। जैसी करनी वैसी भरनी।

रत्नाकर की आंख खुली। माता के पास आकर वह ही सवाल किया।

माता ने उत्तर दिया, पुत्र! मैं तो तेरे कर्म में शरीक होने को तैयार हूँ! पर ईश्वर की सृष्टि के नियम में जो कोई कर्म करता है वह उसका फल आप ही भोगता है।

रत्नाकर ने फिर कुछ नहीं पूछा। स्त्री के पास आया। उससे भी वही सवाल किया। स्त्री को क्या पता था कि इसके परदे में क्या बात छिपी है, उसके मुख से निकल गया। जैसी करनी वैसी भरनी। अपनी करनी पार उतरनी।

अब अधिक पूछताछ की ज़रूरत न रही। उसकी दशा ऐसी होगई कि वर्णन नहीं की जा सकती। आंखें खुल गईं! दुनियां की बेवफ़ाई और स्वार्थ का परदा जो आंखों पर पड़ा हुआ था उठ गया। कोई किसी का साथी नहीं। सारा मेरा तेरा पना झूँठ है। असत्य है। माता पिता, जोरू जाँता, कोई साथ नहीं देता। मोह माया अनर्थ है। आदमी जब तक जीता है। मेरा तेरा पना किया करता है। अंत में यह होता है कि कोई किसी का शरीक नहीं होता। जीवन भर उनके लिये मरते रहो और उनका यह हाल!

माता पिता द्रव्य के लोभी राजा लोभी देश के।
दई देवता बलि के लोभी तुम शरणागत हो राघव॥

रत्नाकर के मन पर चोट लगी। दुखी हुआ। वह समझने बूझने के लिए मजबूर हुआ। कर्म के चक्र में घूम रहा था। अब तक कभी अपनी हालत पर गौर नही किया था। संयोगवश अचानक सुरत इधर से उधर हट गई। और हटने के कारण जो कुछ मन को दुख होता है वह इसको भी हुआ। रंज का पहाड़ सिर पर टूट पड़ा। बेचारा क्या करे। माता पिता स्त्री ने दशा देखी। वह अज्ञानी क्या समझ सकते थे। कि इस पर क्या बीत रही है ?

माता बोली जा जल्दी कुछ खाने को लेआ।
स्त्री बोली लड़के भूखे हैं।

पिता ने कहा यहां तेरा समय नष्ट हो रहा है। कौन जाने इस समय कोई ताज़ा शिकार हाथ आजाय। और समय तो शायद इन बातों को सुनकर रत्नाकर खुश हुआ होता। पर इस समय उसके चित्त को बड़ी ग्लानी और घृणा हुई। उसने किसी से बात न की। मकान के बाहर आकर तीर कमान हाथ से फेंक दिया और रोता हुआ जंगल की ओर चल दिया। नारद वहाँ ही खड़े थे। उसको विश्वास हुआ कि यह ज़रूर कोई विलक्षण साधू हैं और ईश्वर ने इनको मेरे उद्धार के लिये भेजा है। इसके नेत्रों से अश्रु धारा बह रही थी। मन जो पहले पत्थर बना हुआ था, पसीजने लगा और वह पानी बन कर भाप के रूप में आँखों से बाहर निकलने लगा। वह आया और नारद जी के पावों में गिर पड़ा। और धाड़ें मार मार कर रोने लगा।

औगुण हारा, गुण नहीं मन का बड़ा कठोर।
ऐसे समरथ सत गुरु ताहि लगावें ठौर।
तुम तो समरथ साइयां दृढ़ कर पकड़ो बांह।
धुर ही ले पहुचाइयो मत छोड़ो मग मांह।

औगुण किये तो बहु किये करत न लागी बार।
भावे बन्दा बख्सिये भावे गरदन मार।
मैं अपराधी जन्म का नख सिख भरा विकार।
तुम दाता दुख भंजना अपनी ओर निहार।
मन प्रतीत न प्रेम रस नां कुछ तन में ढंग।
ना जानू उस पीउ से क्योंकर रहसी रंग।
भक्ति दान मोहि दीजिये गुरु देवन के देव।
और नहीं कुछ चाहिये निश दिन तेरी सेव।

नारदजी ने रत्नाकर को सिर से पाँव तक देखा। वह सचमुच कुछ का कुछ बन गया था। अब तक जो औरों का माल हड़प रहा था अब भक्ति की दौलत लूटने का अधिकारी पाया गया। मन में प्रसन्न हुये। तीर निशाने पर बैठा। एक पथ भ्रष्ट जीवने सद राह पर आया। दया सागर नारदजी प्रेम रस में पगे हुए बोले, जा सरोवर में स्नान कर आ। तो मैं तुझको गुरु मंत्र की दीक्षा दूं।

वह चित्त में अति प्रसन्न हुआ! गया और झट पट नहाकर लौट आया। नारद ने उसको कहा। 'राम नाम' जपाकर इस से तेरा उद्धार होगा। उसका चित्त जन्म जन्मांत्र से भक्ति की ओर से विमुख था। पर यहाँ उसको पूर्ण रूप में उलटे नाम का सार समझा दिया गया था। वह जपने लगा और यह ही नाम उसकी मुक्ति का कारण बना।

पर यहाँ उलटे नाम के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता आ पड़ी। कथा प्रसंग भी ऐसा ही है। गुसाईं तुलसीदासजी महाराज भी अपनी रामायण में कहते हैं।

उलटा नाम जपत जग जाना।
बालमीक भये ब्रह्म समाना॥

इस उलटे नाम का वास्तव में मालिक के धुनात्मक नाम से मतलब है। जिसकी धार हमारे घट में सीधी ऊपर से आरही है। और हम इसमें अपनी आत्मा को पिरो कर, लीन होकर, उलटी चाल अपने दिमाग़ की ओर चलने का अभ्यास करते हैं। जैसे जल की धार को पकड़ कर मछली मेघ मंडल को चली जाती है। यह जप और उलटे नाम लेने की विधि है, इसका सार है। इसके सिवाय और कुछ नहीं है। धुन आत्मिक नाम जैसे 'बम' 'बम' 'ओ३म्' आदि हैं इनका उलटा सीधा एक ही प्रकार का होता है। 'राम राम' कहो तो, मरा २ कहो तो, धुन राम की ही होती है। कभी 'नाम' की व्याख्या में इस पर पूर्ण रूप में प्रकाश डाला जायगा। फिर बालमीक जो ईश्वर से विमुख और संसार में फंसा था, उसकी वृत्ति को घर भेजकर उधर से उदासीन बना दिया गया। संसार का साक्षात्कार करा दिया गया। अब उसको पूर्ण रूप में संसार से उपराम हो गया। यह संक्षेप में उलटे नाम के जाप का भाव है। अब उसकी दृष्टि इधर संसार से हट कर उधर ईश्वर की ओर लग गई। जो लोग अनहद शब्द का गुरु द्वारा अभ्यास नहीं करते वह इसको समझ नहीं सकते। जो इसके साधन में लगे हैं उनको यह भेद स्वयं मालूम है। कबीर साहब की बाणी है—

उलट समाना आप में प्रगटी जोत अनन्त।
सेवक साहब एक संग खेलें सदा बसंत।
सहजे ही धुन होत है सहजे घट के मांह।
सुर्त संग मेला भया मुख की हाजत नांह।

गुरु नानक साहब का बचन है:—

उलट कमल अमृत भरे यह मन कितहू न जाय।
अजपा जाप न बीसरे, आदि जुगादि समाय।

संसकार किया गया। दीक्षा दी गई। 'राम नाम' के असली जाप की शिक्षा और दीक्षा दे दी गई। इसकी पूर्ण रूप से व्याख्या गुसाईं तुलसीदासजी महाराज ने गरुड़ और काग भुशुन्डी के समवाद में 'मानस रामायण' के उत्तर कांड में की है। रत्नाकर ध्यान में बैठा। मन स्थिर था, चित्त समाहत था। ताड़ी लग गई। हकीकत का परदा उठ गया। जीवन का फल मिल गया। वर्षों अभ्यास और अजपा जाप से काम रहा। संसार छुट गया अब उसकी आत्मा इसकी ओर से उदासीन है।

अलख लखा लालच लगा कहत न आवे बैन।
निज मन धंसा सरूप में सतगुरु दीने सैन॥

यह साधु संग का तत्काल फल है। इसको ही सतसंग कहते हैं। यह पारस और लोहे का मिलाप है। नहीं! नहीं! पारस तो लोहे को सोना बनाता है। पर साधू सेवक को आप जैसा बना लेते हैं। इनकी इससे क्या निसबत है?

पूरे सों परिचय भया, दुख सुख मेला दूर।
जम सौं फांसी कट गई, सांईं मिला हजूर।
गुण इन्द्री सहजे गये सतगुरु करी सहाय।
घट में नाम प्रगट भया बक बक मरे बलाय।

वाहरे नाम के प्रताप! तेरा क्या कहना है? पर यह नाम सहज ही नहीं मिलता। इसका मोल चुकाना पड़ता है। मोल इसकी जान है। जान देने से यह हाथ आता है।

नाम रसायन प्रेम रस पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीना कठिन है मांगे शीष कलाल॥
प्रेम प्याला जो पीए शीष दक्षिणा दे।
लोभी शीष न दे सके नाम प्रेम का ले॥
जो कोई मांगे नाम को शीष देय लेजाय।
राता माता प्रेम का, पिया प्रेम अघाय॥

जो कोई मांगे नाम को, वह ही दास कहाय।
मतवाला दीदार का मांगे मुक्ति बलाय॥

वे कहाँ हैं? जिन के दर्शन मात्र से पाप की जड़ कट जाती है, आयें और हम उनको अपने शीष पर बिठायें! इनकी जादू भरी निगाह से ख़ाक भी रसायन बन जाती है। "निगाह जब चार होती है मोहब्बत आही जाती है।"

रत्नाकर अपनी ध्यान अवस्था से होश में आना नहीं चाहता, वह आनन्द में मग्न है। नेत्र नहीं खुलते। पर अभी इस आत्मा से कुछ काम लेना है। जिस mission(ध्येय) के लिये प्रकृति माता ने इसको प्रगट किया है वह अभी तक पूर्ण नहीं बना। प्रारब्ध कर्म कटने हैं। कर्म दग्ध कराने हैं। नारदजी फिर आये। यहाँ समाधि लगी हुई थी। शरीर हड्डी का ढांचा रह गया था। चमड़ा सूख गया था। उसको मनुष्य कौन कहता। गुरु दीक्षा का मंत्र अपना काम कर गया था।

निशदिन बाझे विरहनी अंतर गत की लाय।
दास कबीरा क्यों बुझे सतगुरु गये लगाय॥

समाधि गहरी है। आत्मा अन्दर ही अन्दर अपने प्रकाश के स्वरूप में मग्न है। नारदजी ने यह दशा देखी। खुश हुए। आत्मिक भाव के बल से इसके दिल को चलायमान किया। नेत्र खुल गये। जिसका ध्यान अंतर में था वही बाहर खड़ा नजर आया। बाहर भीतर सब जगह परिपूर्ण व्यापक दिखाई दिया। संशय और भ्रम जाते रहे। बाहर भीतर शब्द गुरु आत्मा परमात्मा के भेद निवारण होगये। इसी जीवन में निर्वाण और केवल्य पद प्राप्त हुआ। संसार नाम को भी नहीं रहा। हर जगह सत ही सत प्रतीत होने लगा।

हम बासी उस देश के जहां बारह मास बसंत।
प्रेम झड़े विकसे कमल भौंरा कील करंत॥

जिन पाइन भूमि बहु फिरे घूमे देश विदेश।
पिया मिलन जब होईया आँगन भया विदेश॥

रत्नाकर ने नारद की ओर देखा। शीष नवाकर चरणों से लिपट गया।

सत्त नाम के पटतरे देवे को कछु नांह।
कहाँ लग गुरु संतोषिये होंस रहीमन माँह॥

नारदजी बोले रत्नाकर आज से तेरा नाम बाल्मीक होगा। तेरा उद्धार 'राम नाम' के जप से हुआ है इसलिये तू शट कोट रामायण को रच कर संसार के उद्धार का प्रबंध कर।

बाल्मीक बोले भगवन मैं छंद विद्या नहीं जानता। किस तरह आपके आयुष का पालन कर सकूंगा।

नारद मुस्कराये। बाल्मीक क्या वस्तु है ? जो तुझ में नहीं। तू सारी विद्या का भंडार है। तुझ में सरस्वति बसती है। तेरे ही अन्दर गणेश विराजमान हैं। केवल चिन्तन मात्र से तू सब कुछ कर सकेगा। घबराने की आवश्यकता नहीं। समय आवेगा जब इस काम को तू भले प्रकार से पूर्ण कर लेगा। यह कह कर नारदजी अंतरध्यान होगये।

बाल्मीक का जीवन अब पलट गया। वह जहाँ भगवत भजन ध्यान स्मरण करते थे। साथ ही तमसा नदी के किनारे आश्रम बनाकर ऋषियों के समान जीवन व्यतीत करने लगे। और जो शिष्य आते थे उनको शिक्षा देते थे। जो शिष्य आते थे उनमें से एक भारद्वाज भी थे। जिनसे लोग परिचिति हैं।

एक दिन ऋषि नदी के किनारे स्नान करने गये थे। वृक्ष पर करोंज नाम के पक्षी का जोड़ा बैठा हुआ किलोलें कर रहा था। वह उस समय ऐसा आनन्दमग्न था कि उसको किसी शत्रु का भय नहीं रहा। संयोग वश एक बहेलिया हाथ में तीर कमान

लिये उधर से आनिकला, और ऐसा ताक कर तीर का निशाना मारा कि करोंज भूमि पर आरहा। उसकी मादा यह हाल देखकर विलाप करने लगी और बिछोह में ऐसे जोर से शोर मचाने लगी कि ऋषि के चित्त पर इसका गहरा प्रभाव पड़ा! वह खुद चिन्ता में लीन हो गये। और यों ही खुद बखुद उस शोक की दशा में उनकी जिभ्या से यह श्लोक निकल गया:—

मनिषाद प्रतिष्ठांत्व मगमः शश्वर्ता समाः।
यत्क्रौंच मिथुनादेकम् बधी कामक मोहितः॥

अर्थः—हे मनषाद! तुझको जन्म जन्मातर तक इज्जत न मिलेगी। क्योंकि तूने क्रोंज को मार डाला जब वह अपने काम अंग में मग्न था!

इसको संस्कृत में अन्शहुव छंद कहते हैं। वाणी से इस श्लोक के निकलने पर ऋषि को बड़ा आश्चर्य हुआ। समझे "वृथा न होय देव ऋषि वाणी", नारदजी का वाक्य सच्चा हुआ। इसी (वजन) स्वर पर मुझको रामायण बनानी चाहिये। वह आश्रम में आये। ध्यान में गये। रामायण के सब चित्र चिदाकाश में फोटो ग्राफर के चित्रों के समान खिंचे हुए दृष्टि गोचर हुए। ऋषि ने उनको शब्दों के आकार में रच लिया और संसार को एक अनुपम पुस्तक देगये।

"हिम्मते मरदाँ मदद ए खुदा" मनुष्य प्रयत्न और ईश्वर सहायता। कौनसा काम है जो मनुष्य चाहे और न कर सके। उन्होंने परमात्मा की कृपा से और अपने विश्वास के भरोसे पर इसको बना लिया। कहते हैं रामायण में चौबीस हज़ार श्लोक थे। यह संसकृत भाषा की सबसे प्रथम पद्य की पुस्तक है और अपने ढंग की विचित्र और लासानी हैं। यह एक करामात है, मौजिज़ा है, mystry है, कि एक समय जो पुरुष जड़ रूप था उसके

मुख से ऐसी वाणी प्रगट हुई। जिसने संसार के करोड़ों और अर्बों प्राणियों का कल्याण किया। प्रभो तुम धन्य हो! जिससे जो चाहो अपना काम लो!

बाल्मीकजी के जीवन के शिक्षाप्रद और लाभदायक हालात से पुस्तकों के पन्ने खाली हैं जहाँ तक हमको पता लगा है हम केवल उतना ही वर्णन करते हैं।

जिस समय महाराजा रामचन्द्रजी प्रगट हुए और मन्थरा के बहकाने से महारानी केकई ने राम लक्ष्मण और सीता को बनवास दिया वह चित्रकूट पर आये और बाल्मीक ऋषि से मिले। इस मिलाप का वर्णन गोस्वामी तुलसीदासजी की रामायण में आता है।

बाल्मीकजी से मिलने पर रामजी पूछते हैं कि कोई ऐसा स्थान बताइये जहाँ में सीता और लक्ष्मण सहित निवास कर सकूं। इसके उत्तर में जिस मनोहर और विचित्र शब्दों में ऋषि ने अपने प्रेम और भक्ति भाव को प्रकट किया है वह वास्तव में ध्यान देने की वस्तु है। विस्तार पूर्वक तो हमने अपनी 'सिंध बोध मानस रामायण' में चौपाई बार व्याख्या की है।

हमको खेद है कि यहाँ प्रसंग बढ़ जाने के भय से केवल संक्षेप में ही कुछ चौपाइयों के अर्थ देते हैं:—ऋषि कहते हैं:—

जिनके कान समुद्र हैं और जहाँ तुम्हारी कथाओं की नदियाँ उमड़-उमंड कर समाती हैं, और फिर भी वह समुद्र रूपी कान त्रप्त नहीं होते। हे राम! तुम उनके हृदय में बसो।

जिनके नेत्र पपीहा बने हुए तुम्हारे दर्शन रूपी मेघ के लिये तरसते रहते हैं। हे राम! तुम्हारा स्थान उनके हृदय में हो!

जो मनुष्य हंस के समान तुम्हारे यश और गुणों के कथा रूपी मोती चुनते रहते हैं हे राम! उनका हृदय तुम्हारे बसने का स्थान है।

जिनमें काम क्रोध लोभ मोह नहीं है उनके हृदय में आप बसो।

जो सबके प्यारे सबके हितकारी हैं और सुख दुख को एक समान जानते हैं। सत्य और मीठे बचन विवेक विचार से कहते हैं। हे राम! आपका निवास स्थान उनका हृदय हो।

जो पराई स्त्री को माता समझते हैं। दूसरे का धन विष के तुल्य जानते हैं। दूसरों का सुख देख सुखी और दुख देख दुखी होते हैं। हे राम! तुम उनके हृदय में बसो।

जो तुमको प्राणों से भी अधिक प्यारे हैं उनके हृदय में तुम्हारा निवास है। जो भक्तों को प्यार करते हैं। जाति पांति, धन, धर्म बड़ाई, कुल कुटुम्ब को त्याग कर तुमको भजते हैं उनका हृदय तुम्हारा घर है आदि २। इस भक्ति भाव से सनी हुई बाणी के पीछे बाल्मीकजी फिर राम को चित्रकूट में एक जगह ठहरने की हिदायत देते हैं। यहां रामचन्द्रजी कुछ दिनों ठहरे थे। सीताजी ने विशेष रूप में इस स्थान को बहुत पसंद किया था।

बाल्मीकजी का सम्बन्ध रामायण के उस भाग से अधिक है जहाँ सीता जी को देश निकाले का वर्णन है। सीता जी देश निकाले के बाद चित्रकूट आईं। ऋषि ने उनको अपने आश्रम में स्थान दिया। वहां ही उनके दो पुत्र लव और कुश पैदा हुए। उनका पालन पोषण भी ऋषि ने आप किया था।

जिस समय रामजी यज्ञ करने लगे ऋषि को भी उसमें शरीक होने का नवेद दिया गया। लव कुश उनके संग थे। सीताजी साथ साथ आई थीं। और जब रामचन्द्रजी को यह ज्ञात हुआ। उनकी परीक्षा करने पर बल दिया गया। उस समय ऋषि बाल्मीकजी की साक्षी बड़े जोरदार शब्दों में वर्णन की गई है।

जो उत्तर कांड में मौजूद है। और जिससे इनका अभयपन, सतभाव, और ईश्वर भक्ति प्रगट होती है। राम के दोनों पुत्रों को सब शिक्षा इन्होंने ही दी थी। और इनका राज सभा, प्रजा मंडल, ऋषि मंडल में सब जगह मान होता था, इस कारण इनका अनुभव अति विशाल था।

बाल्मीक का जीवन उनकी रामायण है। यदि इनके स्वभाव, और भावों को देखना चहो तो इनकी रामायण को पढ़ो। इनकी रामायण के अतिरिक्त और किसी तरह इनकी महिमा का बोध नहीं हो सकता।

इनकी मृत्यु हुए कितना समय बीत चुका, पर हर हिन्दू इनको इस तरह जानता है मानो वह अब भी हमारे बीच में जीवित हैं। और हमसे बातचीत करते हैं। हमको विश्वास है जब तक एक भी हिन्दू संसार में जीवित है वह बाल्मीक जी के उपकार को कभी न भूलेगा। क्योंकि कष्ट और कलेशों और आपत्ति विपत्ति के समय यदि किसी ने हिन्दू जाति की रक्षा की है तो वह केवल रामायण है। और अब तक भी हममें रामायण के प्रदान किये हुए जीवन का संचार है।

—::०::—

भक्तों के चरित्र गाने की महिमा की कथा

संसार को सद्मार्ग पर लाने और भक्ति भाव सिखाने के अनेक ढंग हैं। एक यह है कि मनुष्य खुद भक्ति का पूर्णरूप बन जाय। और लोग उसके निजी जीवन के निज उदाहरण से खुद बखुद सार तत्व के प्रकाश की छाया प्राप्त करें और उसी प्रकार काम काज करते हुए परमार्थ की कमाई हासिल करें। दूसरा यह है कि वह उपदेश के आधार पर लोगों को सद्विचारों

का प्रचार करें और उसके मानसिक विचार अथवा ख्याल की धारें सूर्य के प्रकाश के समान चारों ओर फैल जांय। तीसरा तरीका यह है कि वह भक्तों की महिमा का गीत राग गाता रहे। और लोगों को उनके पुनीत और पवित्र चरित्र सुना सुना कर सद्मार्ग पर लाये। अन्य प्रणालियों में से यह तीन अधिक प्रचलित हैं।

इनमें से पहला सबसे श्रेष्ठ और सर्वप्रिय है। मनुष्य किसी की बात नहीं सुनता। जो कुछ करते देखता है उसी पर अपना ध्यान जमाता है। और साधन और अभ्यास ही को देख देख कर उनकी सहायता से एक परिणाम पर पहुँचने की कोशिश करता है। उपदेश देना या शुभ विचारों का प्रचार करना बुरा नहीं है। पर इसका प्रभाव इतना नहीं होता। और फिर वहां साधन सम्पन्न व्यक्तिगत का प्रश्न आजाता है। क्या उपदेश करने वाला किसी का नौकर है? यदि नौकर है तो उसका संसारी जीवन निकृष्ट बन्धन का जीवन है और वह इतना लाभप्रद और पवित्र नहीं हो सकता। उपदेश सुनने से पहले संसार उपदेश करने वाले के निजी कर्तव्य, उसके साधन और अभ्यास को देखने का ज्यादा इच्छुक रहता है। और इसलिये यदि कोई उपदेशक या धर्म प्रचारक ऐसा है कि वह उपदेश भी देता है और हद दर्जे का साधन सम्पन्न भी है, तो वह अधिक काम कर जाता है! तीसरे व्यक्ति में कर्तव्य है। उसका जीवन धर्मनिष्ठ है। वह न तो किसी को उपदेश देता है न यह कहता है कि ऐसे कर्म करो, बल्कि जो मालिक के प्रेमी रहे हैं या मौजूद हैं उनके चरित्रों की भक्ति के रूप में शिक्षा देता है। ऐसे मनुष्य का उपदेश अधिक प्रभाव डालता है। क्योंकि वह अपने आप अपने तौर पर, अपने (तर्ज अमल) से उपदेश नहीं करता। तुमको

केवल परम पुनीत और सत पुरुषों के चरित्र सुनाता है। परिणाम यह होता है कि तुम आप उनको सुनकर प्रसन्न होते हो और सहज में तुम मे भक्ति और प्रेम के विचार दाखिल होते जाते हैं। जो किसी न किसी समय तुमको मालिक का भक्त बना कर छोड़ेंगे। और इस दृष्टि से यह मनुष्य बड़ा उपकार करता है।

मामूली उपदेशक बहुत हैं। जिनको सिवाय उपदेश देने और सलाह बताने के दूसरा काम नहीं। क्योंकि संसार में इससे सरल और कोई काम नहीं। उदाहरण के रूप में देखो यदि तुमको कोई बीमारी है तो जिस २ से तुम मिलोगे हर व्यक्ति एक न एक नुसखा तुमको बतावेगा। चाहे वह हकीम या डाक्टर न हो। इसी प्रकार धार्मिक उपदेशक भी संसार में बहुत हैं। कोई उनकी सुनता है कोई नहीं सुनता। एक कहता है चलो यह तो यों ही बातें बनाता फिरता है। दूसरा कहता है हाँ जी यह तो रोटी कमाने का ढंग है, और कुछ नहीं। पर एक तीसरा व्यक्ति जो सचाई और सादगी का जीवन व्यतीत करते हुए तुमको भक्तों के चरित्र सुनाता है तो वह चाहे काम तो उपदेशक का ही करता है पर वह अपने अस्तित्व ममत्व को पेश नहीं करता। इसलिये तुम खुशी से उसकी सुनते हो। और सोचने के लिये विवश होते हो। जब तक कोई व्यक्ति बहुत आला दर्जे का न हो पूर्ण न हो, सर्व साधारण की दृष्टि में वह नहीं जचता। इसके अतिरिक्त अस्तित्व और ममतत्व अहंभाव का पेश करना कुछ बहुत अच्छा भी नहीं है, शोभा भी नहीं देता। मनुष्य को इष्ट और आदर्श दिखाना उचित है। कथा सुनाने वाला यह आदर्श एक अति उत्तम ढंग में पेश करता है। और मजे की बात यह है कि बात बात में उसकी शख्शियत और अहमपना काम करता है। पर तुम भूलकर भी नहीं समझते कि वह जो

कुछ कह रहा है इसमें उसकी ज़ात छिपी हुई रहती है। इसलिये उसकी बात सुनी जाती है और उसकी बात सोची जाती है। और जिस तरह माता बीमार बालक को कड़वी दवा मीठी चीज़ में मिला कर खिला देती है वैसे ही यह कथा सुनाने वाला तुम्हारे साथ वर्ताव करता है।

संसार में नादान से नादान मनुष्य ख्याल करता है कि ढाई अक्ल में से दो उसके हिस्से में आई हैं। बाकी आधी औरों को मिली है। इसलिये किसी समय किसी की बात सुनी तक नहीं जाती। पर जब वही बात कथा प्रसंग में आजाती है सब उसको ध्यान और विचार के साथ सुनते हैं। यहां वह भूल जाते हैं कि ढाई अक्ल में से दो हिस्सा उनके बाँट आई है। बल्कि वे प्राचीन इतिहास होने के कारण उनके लिये एक अति रोचक मनोहर और शिक्षाप्रद बन जाती हैं। प्राचीन इतिहास के मान और बड़ाई का आदर करना मनुष्य का स्वभाव है। जो बीत गया वह अच्छा जो वर्तमान है वह बुरा और जो आवेगा वह कहीं अधिक बुरा होगा। यह एक साधारण बात है जो तुम हर जगह सुनते होगे। हर व्यक्ति अपने और अपने बड़े बूढ़ों के समय को अच्छा कहता है। अपने समय को कोसता रहता है। और आने वाले समय की बुराई का ध्यान रखता है। यह एक साधारण नियम है। और इसलिये जहां कोई बुद्धिमान वर्तमान और आने वाले समय का ख्याल दिल से हटा कर लोगों को पुरानी बातें सुनाकर अपना अर्थ सिद्ध कर लेता है। और सत्य, प्रीत और प्रतीत का भाव उत्पन्न होजाता है। जिसके फलस्वरूप धर्म की बाढ़ सी आजाती है। सब उसके वशीभूत होने लगते हैं।

हर धर्म में तीन स्तंभ होते हैं। अव्वल कर्म, दूसरे अध्यात्म, तीसरे महात्माओं की कहानियाँ। यह तीनों वास्तव में एक हैं।

तीन नहीं। हां एक चीज़ के तुम तीन दृष्टि कौण चाहे कहलो। मगर वह भी बिलकुल सही नहीं है। जो किया जाता है या जिसके करने की शिक्षा दी जाती है वह कर्म है। कर्म क्यों करना चाहिये? इसका क्या लाभ है? इन प्रश्नों का उत्तर और उसकी व्याख्या, फिलसफा (अध्यात्म) है। जो इस कर्म से पृथक नहीं है। क्या किसी ने ऐसा कर्म किया था या अब कर रहे हैं। इन प्रश्नों के उत्तर महात्माओं की कथाओं में मौजूद है। लोगों को संसारी काम धन्धों से इतना अवकाश कहाँ है कि वह सवाल के हर दृष्टिकोण को खुद समझ कर विचार करें। सबको पेट का दुख है। कलियुग में विशेष रूप से इस दुख ने अपने हाथ पाँव बढ़ा लिये हैं। बच्चा २ दुखी है। छोटे छोटे आदमी को चिन्ता है। ज़रूरतें ज्यादा हैं। खर्च करने की कमी है। माया का विस्तार फैला हुआ है। ऐसे समय में अधिक व्याख्या और विस्तार पूर्वक कहना व्यर्थ है। और इसलिये साधारण उपदेश और ज़ाती मिसाल का फल नज़र न आवे तो धर्म के प्रचार का सर्व श्रेष्ठ साधन यह है कि महात्माओं के जीवन चरित्र सुनाये जावें। कथा वार्ता को किस्से कहानी के रूप में सुनना कुछ मनुष्य का स्वभाव है। हम जब बालक थे किस्सा कहानी सुना करते थे। अब जवान हैं नाविल व उपन्यास वगैरः पढ़ते रहते हैं। और जब बूढ़े होंगे तब भी उनके सुनने से जी न भरेगा। इसलिये उपदेश का तीसरा ढंग सदा लाभप्रद, शिक्षादायक और प्रभावशाली होता है। और किसी को यह बुरा नहीं लगता। और बुद्धिमान् चतुर उपदेशक सहज में अपना काम निकाल लेजाते हैं और पथभ्रष्टों को सद्मार्ग पर डाल देते हैं।

और इसके अतिरिक्त एक महान् लाभ और भी होता है। वह क्या है? वह यह है कि तुम को प्राचीन महात्माओं

के सतसंग करने, उनसे वर्तालाप करने और उनसे मिलने मिलाने का मौका हाथ आता है। यह न समझो कि मिलना मिलाना केवल शरीर द्वारा ही होता है। इनके बचनों को सुनो। इनके उपदेशों को पढ़ो। इनकी बातों पर ध्यान पूर्वक विचार करो। आत्मिक दृष्टि से तुम इनसे मिल रहे हो। क्योंकि इनके असितत्व का यदि कहीं पता है तो इनके बचन हैं। इन्हीं बचनों के रूप में तुम इनका असली दर्शन कर सकोगे। यदि तुम रात दिन कबीर साहब की वाणी का पाठ करते हो तो इसका अर्थ यह है कि तुम इनसे मिलते और इनके विचारों से लाभ उठाते हो। इसलिए यदि कोई पुरुष ऐसा मिल जाय जो महात्माओं के चरित्र सुना २ कर सद्मार्ग पर लावे तो ध्यान देने से तुम्हारी समझ में आजायगा कि वह तुमको प्राचीन पुरुषों से मिलने का अवसर प्रदान कर रहा है। और यह संयोग ऐसा है जिसमें भूत और वर्तमान दोनों इस प्रकार मिलाकर एक कर दिये जाते हैं कि उनके बीच लेषमात्र भी अंतर नहीं रहता। और तुम अपनी आत्मिक और दिव्य दृष्टि से देख सकते हो कि प्राचीन समय के महात्मा कैसे थे। उनके विचार क्या थे। किस प्रकार अपने विचारों का प्रचार किया था। यह बहुत बड़ी बात है। और यह ही एक बात ऐसी है जो तुम्हारे दृष्टिकोण से उसको सर्वप्रय और प्रतिष्ठा के योग्य बनाने के लिये काफी है। वह मनुष्य धन्यवाद का पात्र! वह जाति धन्य! वह देश धन्य है, और उसके अहसान का बदला कभी चुकाया नहीं जा सकता। चाहे वह अपनी जिभ्या से बात चीत करता सही, पर वास्तव में उसकी वाणी तुम्हारे पूर्वले महात्माओं की है। जिसका सुनना और समझना तुमको उचित है। बिछड़ों को मिलाने वाला, आत्माओं को गुथ कर एक करने वाला यह मनुष्य है, जो महात्माओं और भक्तों की कथाएँ सुना सुनाकर

तुमको इनके पथ प्रदर्शन का आदेश देता है। वह अपनी कुछ नहीं कहता। दूसरों की कहता है। और वे दूसरे लोग भी वह जिनको तुम मान और आदर की दृष्टि से देखते हो। धर्म का सारांश वेद और स्मृतियों से नहीं लग सकता है। क्योंकि इनमें भिन्नता है, एक ऋषि दूसरे से भिन्न मत रखता है। धर्म वह पथ है, मार्ग है, जिस पर प्राचीन महात्मा चले हैं। और उन्हीं के पग चिन्हों पर चलकर तुम भी धर्मात्मा बनकर धर्म की पराकाष्ठा, मंजिले मक़सूद पर पहुँचोगे। और यदि तुमको इन महत्माओं का कहीं दर्शन हो सकता है तो वह ऐसे ही पुरुषों की वाणी और लेखनी, द्वारा हो सकता है। जिन्होंने प्राचीन इतिहास संग्रह करके इनकी साक्षी दी है अथवा उसको सुनाया है।

नाभाजी भक्तमाल के रचयिता थे। भक्तमाल हिन्दुओं की वह परम पुनीत और धार्मिक पुस्तक है जिसमें केवल भक्तों के चरित्रों की ही व्याख्या की गई है और जहाँ तक उनको पता चला उन्होंने एक एक भक्त के चरित्र को संग्रह करके इस सर्व विख्यात पुस्तक में दाखिल कर दिया है।

श्री नाभाजी का असली नाम नारायणदास है। जो इनके गुरुओं ने प्रदान किया था। इनकी जाति की बाबत अनेक प्रकार की कहावतें प्रसिद्ध हैं। इनकी पैदायश हनुमान वंश में बताई जाती है। जाति का छिपाना व्यर्थ है। पर हिन्दुओं में सदैव से इस पर पर्दा डालने और छिपाने का यत्न किया जाता रहा है, और नीचे कुल के महात्मा को ऊँचे कुल में प्रगट करने की बड़ी कोशिश की जाती है। और सबको ब्राह्मण ही बनाकर प्रगट किया जाता है। इन व्यर्थ की बातों में क्या रक्खा है। कबीर सा० की वाणी है:—

"जात पांत पूँछे ना कोई। हरि को भजे सो हरि का होई।"

जात न पूछो साध की पूछ लीजिये ज्ञान।
काम पड़े लतवार सों पड़ा रहन दो म्यान ॥

कबीरजी मुसलमान जुलाहे थे। इनको ब्राह्मणी का पुत्र बनाया गया। और स्वामी रामानन्दजी के आशीर्वाद का फल जताया गया। रैदासजी चमार थे इनको पहले जन्म का ब्राह्मण साबित करने की कोशिश की गई। इस कोशिश में कहाँ तक सफलता प्राप्त होती है या हो सकती है हर व्यक्ति जानता है। कमल का वृक्ष चाहे गढ्ढे में पैदा हो या सरोवर में, है तो वह कमल। किसी दूसरे नाम से हम उसको नहीं पुकार सकते। दीपक चाहे ब्राह्मण के घर का हो, चाहे चांडाल के घर का हो। वह प्रकाश करता है। प्रकाश करना उसका स्वभाव है, जिनको प्रकाश की आवश्यकता है वह मजबूर होकर और विवश होकर उससे लाभ उठावेंगे। जिनको ज़रूरत नहीं है उनके लिये इसका प्रगट होना न होना एकसा है। आखिर तुम क्यों उसको व्यर्थ में ऊँची जाति और ब्राह्मण वंश का साबित करते हो।

उत्तम और चन्डाल घर इक दीपक उज्यार।
तुलसी मते पतंग के सबही ज्योति इकसार ॥

इनकी नीच कुल में उत्पत्ति से इनके तेज में फर्क क्या आता है। यह आत्मिक सूर्य हैं। आत्मा के प्रकाश को प्राप्त करने वाले खुद बखुद इनकी ओर आकर्षित होंगे। इनको रोक कौन सकता है? दीपक जला नहीं कि परवाना उस पर टूटा नहीं। वह कब दीपक की जात पांत पूछने लगा।

यह आत्मक गुलाब हैं, जहाँ खिले। आत्मा के इच्छुक भौंरे और मक्खियाँ चारों ओर से उनके ऊपर मडलाने लगते हैं। इनको ऐसे व्यर्थ के सवालों के पूछने का अवकाश ही कहाँ है। कि यह गुलाब किसी ब्राह्मण के बाग़ का है या चान्डाल के। जात

पांत से इनकी असलियत में फ़र्क कब आता है। जो इस व्यर्थ बात की ओर ध्यान देते हैं वह छोटे पात्र हैं। छोटे दिल के मनुष्य हैं। और वह पमार्थ से खाली रहते हैं।

नीच नीच सब तर गये संत चरण लौलीन।
जाती के अभिमान में डूबे सकल कुलीन॥

जो कुछ हमको देखना है केवल इतना ही है कि इसका ध्येय, इष्ट क्या है?

जिनको है मालिक का प्यार। हिन्दू और तुरक दोऊ इकसार।
रूप रंग इनका मत देख। श्रद्धा भाव निशाना पेख।

ऐसे सत पुरुष, महात्मा मालिक के रूप हैं। उनकी निसबत जात पांत का सवाल करना उनका अनादर है, उपेक्षा है।

भानु रूप मालिक सुन भाई। नर देही में रहा समाई।

इनके काम को सुफल होने के लिये उच्च कुल की सनद की आवश्यकता नहीं। न यह इसके पराधीन हैं। जहाँ सूर्य उदय हुआ। कोई यह नहीं पूछता हे सूर्य! तेरा कुल क्या है? सब इसके तेज और प्रकाश का लाभ उठाते हैं। और इसके पैरों पर सिर रखने को विवश होते हैं। क्या कभी कोई महात्मा नीच कुल में पैदा होने से अपने mission जीवन के mission ध्येय में असफल हुआ है। इस पर ध्यान दो और स्वयं तुम्हारे तर्क छिन्न भिन्न होकर ऐसे अलोप हो जायेंगे जैसे सूर्य की किरणों के तेज से घटाटोप बादलों का अंधेरा तितर बितर हो जाता है।

नाभाजी हनुमान वंश में थे। हमारे यहां की डोम जाति अपने आपको हनुमान वंश से बतलाती है। यह जाति पूरब में धरकार या दहरकार भी कहलाती है और इनको कोई नहीं छूता। जब कोई मरता है यह उनके जलाने को आग दिया करते हैं। यह इनका काम है। राजा हरीश्चन्द्र इसी जाति के हाथ बनारस में बिके थे। और बनारस में यह लोग बड़े मालदार हैं।

पर नाभाजी के इतिहासकार जिस तरह इस हनुमान वंश का अर्थ लगाते हैं वह भी सुन लीजिये। वह पृथ्वी और आकाश के कुलावे मिलाते हुए इस प्रकार व्याख्या करते हैं। तैलंग देश में गोदावरी के उत्तर में राम मद्राचल एक पर्वत है, वहाँ रघुनाथजी ने गंडक बन में कुछ दिनों के लिये विश्राम किया। वहां रामदास नाम का ब्राह्मण महाराष्ट्र हनुमानजी का अंश, औतार हुआ था उसकी छोटी सी पूंछ भी थी। बड़ा भक्त था। आर्य छंद में पचास हजार श्लोक रामचरित्र के मरहठी भाषा में रचे थे। नाभा जी उसी वंश में पैदा हुए थे। पर इसके बाद के हालात व दंत कथायें जो हिन्दुओं में प्रचलित हैं, जोर के साथ इसका विरोध करती हैं जिसका वर्णन आगे चलकर करूंगा।

नाभाजी अंधे थे। देश में काल पड़ा। इनका पिता बचपन के समय में भीख माँगने गया था रास्ते में ही मर गया। माता ने बेदर्दी से इनको बेकाम समझ कर जंगल में डाल दिया। आयु थोड़ी थी। पर यह साहब कमाल पुरुष किसी विशेष अभिप्राय के हेतु प्रकृति की ओर से संसार में प्रगट हुआ था। बेकसी व दीनदशा में एक जगह बैठे हुए थे। मालिक को इनकी रक्षा और सहायता मन्जूर थी। कील्हजी और अगरदास साधु वहाँ होकर गुज़रे। इसको देखकर पूछने लगे तू कौन है। बालक ने कहा तुम क्या पूछते हो। यदि शरीर की दृष्टि से तुम्हारा सवाल है तो वह क्षण भंगी है। आज है कल न होगा। पाँच तत्वों का बना है। जब बिगड़ेगा तत्व अपने-अपने भंडार में चले जायेंगे। इसकी बाबत मैं क्या उत्तर दूं। यदि आत्मा की दृष्टि से सवाल है तो उसकी जात-पांत नहीं है। न इसमें नाम रूप है। यहाँ भी तुम्हारे प्रश्न का क्या उत्तर दिया जाय। साधू इस उत्तर को सुनकर चकित होगये। समझे कोई बहुत बड़ा संस्कारी जीव है।

लोगों से उसकी जाति का हाल पूछा। मालूम हुआ यह जाति का डोम है। पर यह वैष्णव महात्मा थे। स्वामी रामानन्द और कबीर साहब के अध्यात्म विचारों की लहरें देश व्यापी हो रहीं थीं। इन पर भी उसका प्रभाव था। लड़के को अपने साथ लिया ध्यान से देखने पर मालूम हुआ कि उसकी आँखों के पलक खुले नहीं हैं। यदि इनको चीरा दिया जाय तो क्या अजब यह देखने लग जाय। आँखें खोल दी गईं। आँखों पर जल छिड़का गया। वह देखने लगे। और धीरे-धीरे जो दृष्टि की शक्ति दबी पड़ी थी। खुल गई। यह इनको अपने साथ लाये। और जाति का ख्याल करके इनको चेला तो बना लिया। पर गलताजी, जो अम्बर में जयपुर के इलाके में है, मन्दिर के बाहर झाड़ू देने का काम सुपुर्द किया। और नारायणदास नाम रक्खा। और वैष्णवों की पत्तलों की बची कुची झूंठन इनको खाने को मिलने लगी। नाभाजी भाग्य पर राजी रहे। और वहाँ रहकर साधु सेवा करते, झाड़ू लगाते और संतों के सीत परशाद से अपना पेट भरकर जीवन व्यतीत करते। इस प्रकार इनको सतसंग का भी अवसर मिल गया और भक्ति के संस्कार पैदा होने लगे।

एक दिन की बात है यह मन्दिर के बाहर झाड़ू दे रहे थे। उग्रदास जी चबूतरे पर बैठे हुए ध्यान में थे। इनको यह प्रतीत हुआ कि उनके किसी शिष्य पर कष्ट पड़ गया है और उसकी नाव नदी में डूब रही है। इनको मन ही मन में दुख हुआ। उसी समय नाभाजी बोल उठे। महाराज! आप भगवान का ध्यान करें। नाव बच गई। डूबी नहीं! मालिक ने रक्षा की। अब इसके डूबने का भय नहीं रहा। यह सुन कर उग्रदासजी की आँखें खुल गईं।

कोई इस प्रकार की बातों को गलत न समझे। जैसे स्वप्न की बातें कभी २ सच्ची होती हैं। वैसे ही ध्यान के समय भी कभी २ जीवन के दृश्यों का मन पर ठीक २ प्रभाव पड़ जाता है। जो मन के निर्मल हैं और जिनके मन का दर्पण शुद्ध होगया है वह इसको भले प्रकार से अनुभव कर सकते हैं। आत्म विद्या के जानने वाले इसको ख्याल की सीमा से परे नहीं जानते। ऐसे दृष्य साधारण लोगों पर भी बीतते रहते हैं। महात्माओं का तो कहना ही क्या है। और यह संसार की सब जातियों में साधारण सी बात है। जो अध्यात्म धन से महरूम हैं, अभागे हैं, वह इनको मिथ्या समझते हैं। पर यह इनकी बुद्धि और स्मरण शक्ति का दोष है। योगी को दिव्य शक्ति को सब कोई जानता है। इस कारण इसकी व्याख्या व्यर्थ है।

उग्रदासजी चकित हुए! और चित्त में प्रसन्न होकर कहने लगे। वत्स! तेरे अतर की आंख खुल गई है। जा अब झाड़ू देने के काम से तुझको मुक्त किया गया। और उस समय से अन्य साधुओं की भांति इनके साथ सलूक होने लगा।
धीरे २ नाभाजी की दशा बदल गई। अध्यात्म का रंग इतना गहरा जमा कि वर्णन नहीं किया जा सकता। और हनुमान वंश का लड़का अब मान और संस्कार का पात्र बन गया।

सतसंग में बहुत समय बीत गया। नाभाजी को भक्तों के चरित्र सुनने का बड़ा चाव था। चूंकि गलताजी में इन्होंने कुछ लिखना पढ़ना सीख लिया था और रामानुज सम्प्रदा के फल-स्वरूप जात पांत की जड़ कट गई थी। और कबीर साहब के घनघोर शब्दों की ध्वनि हर जगह पर गूंज रही थी, यह भजन वगैरा भी कहने लगे। और जिस समय अपने भजन गाने लगते एक समाँ बँध जाता था। मनुष्य चकित रह जाते थे। गुरु ने

यह दशा देखी प्रसन्न होकर कहने लगे। नारायणदास! क्या अच्छा होता यदि तुम भक्तों के चरित्र गाकर सुनाते। नाभाजी बोले प्रभो! भक्तों की महिमा नारद, शेष शारदा भी वर्णन नहीं कर सकते, मेरी क्या शक्ति है जो साहस करूं। गुरु ने कहा, मालिक तुम्हारी सहायता करेगा। और तुम अपनी दिव्य दृष्टि से आकाश मंडल में भक्तों के चरित्रों के चित्रों को देख सकोगे। जगत के उद्धार के लिये, संसार के उपकार के लिये और भक्त-जनों के भक्ति भाव को उत्तेजन करने के हेतु, इस कार्य को साथ में लो। तुमसे श्रेष्ठ इस काम के योग्य कोई अन्य व्यक्ति नज़र नहीं आता। नाभाजी ने गुरु को नमस्कार किया और यह कठिन काम अपने हाथ में लिया।

नाभा जी हिन्दी भाषा के विद्वान् थे। कबीर साहब के बचन विशेष रूप में उनकी जिभ्या पर रहते थे। पर जहाँ कबीर साहब की वाणी सरल और देहातियों की बोलचाल में थी। इनके बचन बड़े मनोहर, पुनीत और थोड़े से कठिन हैं। पर उन्होंने बड़ी मेहनत और परिश्रम करके इसको कर ही डाला। पुस्तक बन कर तैयार हुई। उन्होंने गुरु को अर्पण की। जिसने सुना प्रशंसा की। हर ओर से वाह २ की आवाज़ आने लगी। और वह पुस्तक भक्तमाल के नाम से प्रसिद्ध हुई।

जब किताब पूर्णरूप में खतम होगई, उस समय नाभाजी अपने गुरु के साथ बनारस में आये। वहां कई जगह भक्तमाल की कथा सुनाई गई। जिन्होंने सुना विहवल होगये, गद् २ होगये। और यह सम्मति हुई कि सब वैष्णव साधुओं को इकट्ठा करके उनसे इसको सम्पूर्ण करने की राय लीजाय। इस उद्देश्य से साधुओं का भंडारा किया गया। और सबको निवेदन देकर बुलाया गया। सबने आना मंजूर कर लिया। गोस्वामी तुलसी-

दास जी निमंत्रण पाकर हंसे। और कहने लगे डोम के भंडारे में मैं कैसे जाऊँ ! यह समाचार नाभा जी को मिला।

भंडारे का समय होगया। वैष्णवों में विशेषकर जो रामानन्द जी और कबीर साहब के पंथों में थे, जातपांत का इतना विचार नहीं किया जाता था। सब साधू बड़े हितचित के साथ भंडारे में सम्मिलित हुए। जब गोस्वामी तुलसीदास जी ने देखा कि सब भंडारे में चले जारहे हैं। उनको लज्जा आई सोचने लगे। भक्ति मार्ग में जातपांत का अभिमान बुरा है। मैं बड़ा घृणित हूं, अयोग्य हूँ, जो ऐसा दुराग्रह करके नहीं गया। चित्त में लज्जायमान होकर सबके पीछे यह भी गये। साधू पंगत में बैठ चुके थे। जगह नहीं थी। यह वहां बैठ गये जहाँ सबके जूते उतर रहे थे। रोटी हाथ में लेली। दाल के लिए जब कोई दौना न देखा तो नाभा जी का जूता जो वहां पड़ा था उसमें दाल लेली। जब खाने का समय आया और सब लक्ष्मीनारायण का नाम लेकर भोग लगाने को तत्पर हुए। गोस्वामीजी उसी जूते में खाने को तैयार हुए। कहते हैं दो ग्रास खाये। अभी तीसरा मुख में जाने को ही था कि नाभा जी की दृष्टि पड़ गई। शीघ्र ही हाथ पकड़ लिया। तुलसी तुम धन्य हो ! बस सारी भक्ति तुमको ही नहीं लेनी चाहिये। औरों को भी कुछ छोड़ दो। तुलसीदासजी के नेत्रों से प्रेम अङ्ग फूट-फूट कर उमड़ रहा था। शीश नवा लिया था।

भंडारा हो गया। भक्तों ने भक्तमाल की कथा सुनी। जहाँ तहाँ शनसाधन किया गया। और देखो नाभाजी ने तुलसीदास जी को उस माला का सुमेरू बना दिया, और देखा अब इनके भक्ति भाव का संसार अनुग्रही है, कायल है।

भक्तमाल नाभाजी के जीवन में ही सर्वप्रय हो चुकी थी। सैकड़ों वर्ष उसका प्रचार रहा। करोड़ों मनुष्य उसके प्रताप से भव सागर तर गये। इस समय में उनका काव्य बहुत कम मनुष्यों की समझ में आता है। इस हालत को देख कर स्वामी प्रयादासजी ने उसकी टीका की और उसका अनुवाद बाद में लाला लालजी दास कायस्थ साहब ने १२५८ हिजरी में किया। जो सरल और स्पष्ट है। तीसरा अनुवाद लाला गुमानी लाल साहब कायस्थ साकिन रोहतक ने सन् १८६८ में किया। और एक आध प्रेमी सज्जनों ने भी इसको फ़ारसी और उर्दू में कुछ कुछ लिखा। अन्त में लाला तुलसीराम साहब अग्रवाल ने इसको पूर्ण रूप में तरतीब दी। जिसको कसरत से पढ़ा जाता है। मैं निजी तौर पर इन सब महानुभावों का कृतज्ञ हूँ। पूर्ण पुस्तक तो भला मैं क्या लिखता। मुझ में ताक़त ही क्या है। कुछ २ कभी इनकी पुस्तकों से लेकर लोगों को सुनाता रहता हूँ। ताकि असली भक्तमाल के पढ़ने की ओर लोगों की रुचि हो। मैंने बाद में भक्तमाल को पूरा भी लिखा है।

नाभाजी की कविता बड़ी मधुर और सुरीली और रस भरी है। भक्तमाल के छंदों के नमूने तो मैं यहाँ नहीं देता। उनकी पुस्तक मौजूद है। जो चाहें ख़रीद कर पढ़लें। इनके अध्यात्म विचारों की झलक या उपमा दिखाने के हेतु एक शब्द यहाँ प्रस्तुत करता हूं :—

नाभानभ, केला, कमल कील सरसेला।
दरपण नैन सैन मन माँजा, लाजा अलख अकेला।
तिल पर दल, दल ऊपर दामिन, ज्योति में होत उजेला।
अंडा पार सार लख सूरत, सुनी सुन्न सुहेला।
चढ़ गई जाय धाय गढ़ ऊपर शब्द सुरत भया मेला।
यह सब खेल अपेल अमेला, सिंध नीर नद मेला।

जल जल धार सार पद जैसे नहीं गुरु नहीं चेला।
नाभा नैन ऐन अन्दर के खुल गये निरख निहाला।
संत उंचिष्ट वार मन मेला दुर्लभ दीन दुहेला।

वाह! वाह! क्या अनुपम वाणी है! कैसी सूक्ष्म विचार धारा! दिव्य और अद्भुत है। मनुष्य रात दिन ऐसी परमपुनीत और पवित्र वाणी को गाया करे और मन कभी त्रप्त न हो।

नाभाजी सुर्त शब्द योग के अभ्यासी थे। जैसा इनकी वाणी से प्रगट है। और उप्रोक्त भजन में भी इसका संकेत है।

इस महान आत्मा ने हमको तुमको और सारे विश्व को महात्माओं के चरित्र सुना २ कर प्रभु के चरण कमल का भक्त बनाया। अब भी इसके फलसरूप कितने भवसागर से पार हो रहे हैं। यदि तुम भी इनको सुनोगे तो क्या मजाल कि तुम्हारा चित्त भगवान के चरणों में न लगे।

आओ! आओ! हरि के भक्तों के गुण गावें। और उनसे प्रेम के विचारों को लेकर अपना उद्धार करें! जिससे मनुष्य जीवन सुफल हो जाय।

—:o:—

कर्म धर्म की महिमा की कथा

मनुष्य अपने आप को धर्मी कहते तो हैं, पर कर्म निष्ट और धर्म का पालन करने वाला संसार में कोई विरला ही होगा। कर्म धर्म योग हैं। और इन योगों में नेक और सच्चा उतरना इतना सरल नहीं है। कर्म इस प्रकार किया जाय कि अपने आप का नितांत अभाव हो। निजी स्वार्थ सिद्धि का प्रश्न कभी बीच में न आने पाये। कर्म मालिक के चरणों में अर्पण हो। और उसके फल की कभी इच्छा न रक्खी जाय। जो व्यक्ति इस प्रकार कर्म करता है वह कर्म योगी कहलाता है। और वह बड़ा

पूजने योग्य व्यक्ति है। इसी प्रकार जिनको पग पग पर धर्म का ख्याल है, जो धर्म के आगे और किसी का मान नहीं करते- जिनका बोलना, चलना, फिरना, खाना पीना सब धर्म के अनुकूल है वह धर्मात्मा कहलाते हैं। बुद्धदेव महाराज सर्वश्रेष्ठ कर्म योगी थे। श्री रामचन्द्रजी और कृष्णचन्द्रजी महराज धर्मात्मा थे, और धर्मात्मा ही अपने पूर्णरूप में मर्यादा पुरुषोत्तम कहलाते हैं। बुद्ध महाराज ने कर्म की शिक्षा दी। आप स्वयं कर्म किया पर औरों के हेतु किया। अपने लिये कुछ नहीं किया। स्त्री पुत्र राज काज किसी का ध्यान चित्तमें न आया। सारे विश्व, सारे ब्रह्मांड और प्राणी मात्र के लिये उनके मन में जगह थी। हर जीवनधारी के लिए उनके जी में प्रेम था। और उनके जीवन का ध्येय और मिशन भी यह ही था। कि सारे विश्व को अज्ञान के बन्धन से मुक्त किया जाय। और संसारी कष्ट कलेशों का नाश करके रक्षा की जाय। इनसे श्रेष्ठ कर्मयोगी संसार के इतिहास में कहीं भी नज़र नहीं आता। किसी जाति ने ऐसे रत्न नहीं पैदा किये। इसी प्रकार श्री रामचन्द्र जी और श्री कृष्ण भगवान धर्म के प्रेमी थे। राजा थे। गृहस्थी थे। सन्तान वाले थे। पर जहाँ धर्म का प्रश्न आता था हर वस्तु को बलिदान कर देते थे। रावण और लंका के युद्ध से अधिक भयानक हत्याकांड कहाँ हुए होंगे। तुम अच्छी तरह से विचार कर देखो क्या कभी इन महात्माओं ने अपने नित्यकर्म से एक दिन भी उदासीनता प्रगट की थी। इनमें से एक ने भी नीति और सभ्यता के विरुद्ध कोई काम नहीं किया था। जो कर्म किया धर्म के हेतु और धर्म की दृष्टि से। जब रावण का भाई विभीषण रामचन्द्रजी से मिलने आया। लोगों की सम्मति हुई कि इसको बन्दी बना लिया जाय।

पर वह बोले ऐसा कभी न होगा। धर्म आज्ञा नहीं देता। शरण में आये हुए के साथ दुरव्यवहार करना उचित नहीं। आदि से अन्त तक सारी रामायण पढ़ डालो। कोई मौका भी ऐसा न मिलेगा जहां रामचन्द्र जी ने धर्म के अनुकूल चलने का आदेश न दिया हो। या धर्म पर न चले हों। श्रीकृष्णचन्द्र आनन्दकन्द के हालात महाभारत में लिखे हैं। इतनी बड़ी पुस्तक में कहीं भी तो दिखाओ कि उनकी जात से धर्म विरुद्ध कोई कर्म हुआ हो। राजा युधिष्ठर के यज्ञ में भीष्म पितामह ने कृष्ण भगवान को सब से श्रेष्ठ और पूजनीय महात्मा बतलाया था। शिशुपाल इनका सम्बन्धी था। विरोध के कारण इनको गालियां देने लगा। कृष्ण भगवान खड़े २ मुस्कराते रहे। लोगों ने कहा, आप क्षत्री हैं ऐसे अवसर पर क्षत्री चुपचाप नही रहते। उन्होंने उत्तर दिया मैंने इसकी माता से प्रण किया था कि जब यह सौ बार मेरा अपमान करलेगा तब मैं इसको मार दूँगा। जब शिशुपाल सौ बार गाली दे चुका और फिर भी अपने दुरव्यवहार की रोक-थाम न कर सका। भगवान् कृष्ण के सुदर्शन चक्र ने उसी घड़ी उसका काम तमाम कर दिया। महाराज युधिष्ठर ने इनको धृतराष्ट्र के दरबार में अपना एलची बनाकर भेजा था। वहां दुर्योधन ने इनका अपमान किया। उन्होंने कहा मैं तुमको इस अपमान का दंड दे सकता हूं। धृतराष्ट्र ने क्षमा याचना करके उनका अतिथि सत्कार करना चाहा और कहा कि आप मेरे रिश्तेदार हैं। क्रोध न करें। यह बोले। इस अवसर पर मैं तुम्हारा सगा सम्बन्धी नहीं हूं तुमने मेरा निरादर नहीं किया बल्कि मेरे महाराजा का अपमान किया है। इस कारण मैं तुम्हारे यहाँ दावत न खाऊँगा। वह यह कह कर दरबार से उठ आये। भूखे थे। विदुर दासीपुत्र थे। उनके घर गये। उबाला हुआ साग खाया जिसमें नमक तक नहीं मिलाया गया

था। दुर्योधन की दावत न स्वीकार की। महाभारत का संग्राम हुआ। कृष्ण बराबर इसमें शरीक रहे। पर कहीं भी इनके व्यवहार में कमी नहीं थी। जो काम किया धर्म के अनुकूल किया। और इसी कारण कहा गया था कि जिधर कृष्ण भगवान होंगे उधर ही विजय होगी। क्योंकि कृष्णचन्द्र जी साक्षात् धर्म की मूर्ति थे।

सिक्खों के इतिहास में दस गुरु महाराजों को देखो। कैसे धर्म के चमकते हुए चित्र हैं! इनके परम पुनीत और पवित्र जन्म अति शिक्षाप्रद हैं। गुरु नानक साहब से लेकर आखिरी बादशाह गुरु गोविन्दसिंह साहब और उनके तीन युवराजों के उदाहरणों को लीजिये। किस प्रकार यह सब धर्म के नाम पर बलिदान दे दे कर, धर्म की महिमा का दृश्य सबको दिखा गये हैं। गुरु तेगबहादुर साहब ने केवल गौ और ब्राह्मण की रक्षा के हेतु अपने आपको औरंगजेब के हाथ से नष्ट करवाया और इनका शीश बड़ी निर्दयता के साथ काटा गया। गुरुगोविन्दसिंह साहब के दो युवराज जीवित ही दीवारों में चुन दिये गये! पर धर्म को न त्यागा। तीसरे साहबज़ादे संग्राम में आहुत हुए। गुरु साहब ने स्वयं सन्तान, धन, माल सब कुछ धर्म के पथ पर बलिदान किया और आह तक न की। सिक्ख आहुतों का बलिदान इससे कहीं अधिक रोमांचकारी और अति भयानक है! भाई मुनिसिंह, तारोसिंह, सबाजसिंह, सुभखसिंह आदि किस प्रकार चर्खी पर चढ़ा २ कर सताये गये। हड्डियां चखियों के बीच में मरोड़ी गईं। अनेक प्रकार से दुख दे दे कर मारे गये। पर किसी ने धर्म के नाम पर बट्टा न लगने दिया। न ही धर्म का त्याग किया। इनके हालात तुमको अनेक पुस्तकों में मिलेंगे। हकीकतराय एक अठारह वर्ष के बच्चे की मृत्यु, धर्म की वेदी पर बलिदान का एक जीता जागता उदाहरण है। उस समय के

इस रोमांचकारी सीन को एक कवि ने कैसा दर्शाया है। संक्षेप में कहते हैं :—

मुसलमाँ होने को ए किबला मैं तैयार नहीं।
यह सर है आपके सामने मुझे इन्कार नहीं।
काट सकते हो तो बाहर की हकीकत काटो।
काटती असल हकीकत को यह तलवार नहीं।

यह उन लोगों के वाकात हैं जो धर्म के नाम पर बलिदान हो गये। जो इस प्रकार धर्म पालन करते हैं या कर सकते हैं वे ही धर्मात्मा और धर्म परायण हैं। बाकी और लोग तो यों ही धर्म के नाम लेवा हैं।

बहुधा लोग यह कहा करते हैं कि संसारी होकर कोई व्यक्ति धर्म का पालन नहीं कर सकता। क्योंकि धर्म में सत्य बोलना पड़ता है। धर्म में ईमानदारी से रहना होता है। धर्म में न्याय को दृष्टि के आगे रखना पड़ता है। धर्म से और दुनिया से परस्पर विरोध है, यह कहना नितांत मिथ्या है। यदि संसार का काम भी कोई व्यक्ति किसी तरह कर सकता है तो वह केवल एक धर्मात्मा ही मनुष्य कर सकता है। झूठे और बेईमानों में कमजोरी रहती है। कायरपन रहता है। दोष रहते हैं। और चाहे वे धोखे धपाड़े से अपना काम कुछ दिनों के लिये निकाल ले जांय, पर उनका जीवन न केवल कष्ट और कलेश का जीवन होगा बल्कि उनका काम भी कष्ट और दुक्खों का सिलसिला पैदा करने वाला होगा। ठीक इसी के विपरीत जो धर्मात्मा हैं उनको अपने निज स्वार्थ का ध्यान कम होने के कारण कष्ट और कलेशों के समय में भी वह पापियों और अधर्मियों के समान दुखी नहीं होते। धर्म ध्वजा अथवा खुशी उनको एक घड़ी के लिये भी नहीं छोड़ती। और वह परीक्षा और कसौटी के समय भी हंसते-

खेलते हुए काम करते हैं। और हंसी खुशी के साथ संसार से कूच कर जाते हैं। दुनिया हाथा पाई का क्षेत्र है। यहाँ देवासुर संग्राम हर समय और सदैव छिड़ा रहता है। कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता कि इसकी परीक्षा का समय न आवेगा। पर इस परख या कसौटी में यदि कोई प्राणी सफल हुआ है या हो सकता है, तो वह केवल धर्मात्मा ही पुरुष है। अधर्मी सदा असफल रहते हैं। क्योंकि असली सफलता केवल धर्म में ही है। अधर्म कभी कामयाब नहीं होता क्योंकि इसकी जड़ सदैव खोखली रहती है।

जिन्होंने अपने जीवन में कर्म और धर्म परायण होने के सुन्दर चित्र दिखलाये हैं उनमें से जग विख्यात और परम पूज्य जीवन भीष्म पितामह जी का है। जो कर्म योगी और धर्म योगी कहने योग्य हैं।

भीष्म जी का असली नाम देवव्रत था। जैसा यह नाम सुन्दर है वैसा ही भीष्म नाम भी गम्भीर और सनजीदा है। यह महाराजा शन्तु के पुत्र श्री गंगाजी के पेट से पैदा हुए थे। जब गंगाजी इनको महाराज शन्तु के सुपुर्द करने लगीं, तो देवव्रत के साहस, पराक्रम और धर्म के प्यार की बहुत प्रशंसा की। जिसके वह वास्तव में योग्य भी थे।

राजा शन्तु एक केवट की लड़की पर मोहित हुए। मल्लाह ने इस शर्त पर शादी करनी मजूंर की कि केवल उसकी लड़की की सन्तान ही सिंहासन पर बैठे। राजा विवश होकर चुप लौट आया। देवव्रत ने यह हाल देखा केवट के पास पहुँचे और कहने लगे। तू अपनी लड़की मेरे साथ करदे वह मेरी माता होगी। केवट ने पूछा तू कौन है? इन्होंने उत्तर दिया, मैं देवव्रत राजा शन्तु का पुत्र हूँ। मल्लाह ने कहा क्या तुम मेरी शर्त से परिचित हो? यह बोले मैं प्रण करता हूँ कि कभी राजगद्दी का वारिस न

बनूंगा। और न ही कभी इसका दावा करूंगा। मल्लाह ने कहा माना तुम ऐसा करोगे। पर तुम्हारी सन्तान कब अपने हक़ को छोड़ने लगी। देवव्रत ने जवाब दिया, मैं प्रतिज्ञा करता हूं कि मैं आजन्म शादी न करूंगा न इस विचार को ही मन में आने दूंगा। मल्लाह चकित होगया! यह भीष्म प्रण है। भीष्म प्रतिज्ञा है। और देखो उसी समय से देवव्रत का नाम ही भीष्म होगया। केवट की पुत्री आई और शन्तु की रानी बनी। राजा शन्तु ने भी चित्त में अति प्रसन्न हो देवव्रत को वह दुर्लभ वरदान दिया जो किसी योगी और तपस्वी को भी दुर्लभ है; अथवा अपनी मृत्यु अपने हाथ रहेगी किसी के मारे न मरोगे। युवा होने पर भी भीष्म जी ने विवाह न किया और अपनी दूसरी सौतेली माता की सन्तान की देखरेख में रहे। और उनको ही राजगद्दी पर बैठाया। जब यह लड़के मर गये और गद्दी का कोई वारिस न रहा। उनसे माता ने अनेक बार विवाह करने का आग्रह किया पर यह अपने प्रण पर अटल रहे। और दूसरे उपायों से अपने भाइयों की स्त्रियों से सन्तान उत्पन्न कराई। जो पांडु, धृतराष्ट्र और विदुर के नामों से प्रसिद्ध हैं।

धृतराष्ट्र अंधे थे। पांडु सिंहासन पर बैठे पर जल्दी ही मर गये। उनके पुत्र नाबालिग़ थे, छोटी आयु के थे, इसलिये यह सम्मति हुई कि धृतराष्ट्र को तख्त पर बैठाया जाय। पांडु के पाँच पुत्र युधिष्ठर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव थे। धृतराष्ट्र के एक सौ एक पुत्र दुर्योधन आदि थे। इनमें राज के लिये झगड़ा हुआ। भीष्म चूंकि धृतराष्ट्र के नमक ख्वार थे उसका साथ दिया।

महाभारत का संग्राम इस विरोध का परिणाम था। अर्जुन युधिष्ठिर की सेना के सिपेसालार थे? भीष्म दुर्योधन के सेनापति

थे। जब युद्ध छिड़ने को था युधिष्ठर मिलने को आये नमस्कार किया। भीष्म जी बोले बेटे ! तू लड़ाई के समय क्यों आया ?

यह बोले आप कुल में बड़े बूढ़े हैं आप से लड़ने की आज्ञा लेने आया हूं जिससे वंश की परमपरा में फर्क न आवे। वह हंसे और उनको खुशी से बिदा किया।

लड़ाई हुई। भीष्म जी ने ऐसी सूरवीरता के करतब दिखाये कि वीरों के छक्के छूट गये। भीष्म जी इस बात को जानते थे कि न्याय का पलड़ा युधिष्ठर की ओर है और उनके हमदर्द भी थे। पर धृतराष्ट्र के नमक से पालन पोषण होने के प्रभाव से ऐसा विकट संग्राम किया कि अर्जुन और श्री कृष्ण सब चकित रह गये। श्री कृष्ण ने युधिष्ठर से कहा भीष्मजी से जाकर पूछो तुम कैसे मरोगे ? और शीघ्र ही वह तदबीर करो वरन् पांडवों की खैर नहीं है। यह गये। भीष्म जी ने फिर पूछा। कैसे आये ? यह बोले पूछने आये हैं कि आप कैसे मरेंगे। भीष्म मुस्कराये, पुत्र ! मेरे समीप किसी को भी युद्ध करने का साहस नहीं है। न कोई मेरे जीते जी कौरवों पर विजय पा सकता है। यदि तू नारीरूप शिखंडी को मेरे सामने खड़ा करदे तो मैं हथियार गिरा दूँगा। क्षत्री स्त्री पर हाथ नहीं डालते। उस समय चाहे अर्जुन मुझे मार दे और किसी तरह भी मैं न मरूँगा।

युद्ध छिड़ गया। भीष्म ने फिर सिंह के समान विफरना शुरू किया। पाँडव दल में हा हा कार मच गया। श्री कृष्ण भगवान् अर्जुन के सारथी थे तो भी भीष्म जी के बाणों की मार से उनका रथ उछल जाता था। कृष्ण जी बोले भीष्मजी ! क्या करूँ ! यदि मुझको लड़ना होता तो तुम को लड़ने का स्वाद चखा देता। विवश हूँ, महाभारत में शस्त्र न उठाने की

प्रतिज्ञा कर चुका हूँ। भीष्म हँसे। यदि मैं क्षत्री हूं तो तुम से हथियार उठवा कर छोड़ूँगा। यह कह कर इस जोर से बाण मारने लगे कि कृष्ण भगवान का शरीर छलनी कर दिया। आखिर वह कुमला कर रथ से उतर पड़े और उसका पहिया उठा कर भीष्म जी की ओर फैंकना चाहा। भीष्म जी ने मुस्करा कर कहा, धन्य हैं आप! आपने मेरी प्रतिज्ञा रखली। वरन् पहिया हथियार नहीं है और हथियार भी है। कृष्णजी फिर रथ पर चढ़ गये। फिर संग्राम शुरू हुआ। शिखंडी सामने खड़ा कर दिया गया। कर्मयोगी ने धनुषबाण पृथ्वी पर डाल दिये। और अर्जुन के बाणों ने उनको घायल करके बेकार कर दिया। और महाभारत का साँचा केहरी नीचे गिर पड़ा।

दोनों सेनाओं में सन्नाटा छा गया। युद्ध बंद हो गया। दुर्योधन उठाकर उनको डेरे में ले गया। यह बोले मुझको किसी ऊँचे टीले पर रख दो जो संग्राम देखता रहूं। ऐसा ही किया गया। थोड़ी देर बाद कहने लगे एक तकीया सिर के नीचे रख दो ताकि सिर ऊँचा हो जाय। दुर्योधन रेशमी तकिया ले आया भीष्म ने नफ़रत से देखा। जाओ? अर्जुन को बुलाओ। वह मेरे योग्य तकिया बना देगा। अर्जुन हाथ जोड़ कर सामने आये। पूछा महाराज! क्या आज्ञा है? उन्होंने कहा, पुत्र! तेरे बाणों ने शरीर को बेकाम कर दिया है। सिर लटक गया है। अपने दादा के लिये तकिया तो लगादे जिससे सिर ऊँचा उठकर तेरी सूरवीरता का करतब देख सके। अर्जुन ने पृथ्वी में तीन बाण मारे और इस राज ऋषि का सिर उन पर रख दिया। भीष्म प्रसन्न हुए और बोले देखो यह क्षत्रियों का तकिया है। अर्जुन को आशीवाद दे कर बिदा किया। थोड़ी देर बाद प्यास लगी। पानी मांगा। दुर्योधन लोटे में पानी लाया। यह बोले अर्जुन

को बुलाओ ? केवल वह ही मुझ को जल पिलावेगा। और जब बूढ़े सिंह ने कहा पुत्र ! बड़ी प्यास लगी है। पानी तो पिला दे। अर्जुन ने पृथ्वी में बाण मारा पृथ्वी से जल की धार उमड़ी। भीष्मजी के मुख में पड़ी और वह त्रप्त होकर अर्जुन को आशीर्बाद देने लगे। वह क्या विद्या थी जिसके बल से इस प्रकार जल के सोते उमड़ आते थे। आज किसी को मालूम नहीं।

युद्ध का अन्त हुआ। सब मारे गये। केवल पांच पांडव और श्री कृष्ण इस ओर और अस्वस्थामा वह दो एक और उस तरफ़ जीवित बचे। भीष्म जी बावन दिन तक सर सय्या या सरों की सेज पर पड़े रहे। लड़ाई के बाद युधिष्ठिर महाराज को राज काज नीति और धर्म का उपदेश दिया जो शांति पर्व में मौजूद है। और फिर बड़ी शांति के साथ अपने प्राण त्याग किये ! यह भीष्म पितामह का संक्षेप में इतिहास है। कर्मयोगी इस प्रकार काम कर दिखाते हैं।

—:o:—

गुरु सेवा की महिमा की कथा

नादान समझते हैं गुरु मनुष्य के हाड़ मांस से बने हुए ढांचे का नाम है। इनको इस बात का परिचय नहीं कि सिवाय सच्चे मालिक के और किसी के वास्ते गुरु का नाम इस्तेमाल में नहीं आता। गुरु वास्तव में ख्याली इष्ट का नाम है। जो पूर्ण है, त्रुटियों से रहित है। मनुष्य कमजोरियों से ऊँचा है। उसमें दोष नहीं। वह निर्दोष है। उसमें पाप नहीं वह पाप रहित है। वह मालिक कुल से पृथक् नहीं वह मालिक कुल का निजरूप है। और जो कुछ भजन बन्दगी की जाती है वह उसके लिये है। और किसी दूसरे के लिये नहीं। यह गुरु शब्द की व्याख्या है।

पर यह शब्द आदि में सिवाय सतगुरु के जिसके ज़रिये आत्मिक शिक्षा व दीक्षा होती है और जगह इसका नाम नहीं लिया जाता। ईश्वर की समझ किससे आती है ? गुरु से। इस कारण गुरु की मान प्रतिष्ठा आवश्यक है। आत्मा ने भक्ति भाव के सिलसिले को जारी करने के हेतु मनुष्य का चोला ग्रहण किया है। भला और किस रूप में उसको प्रगट किया जा सकता था ? इसलिये उनकी सेवा और पूजा आवश्यकीय और ज़रूरी है ! और यहाँ भी गुरु का विश्वास उसके हाड़ और माँस के ढाँचे मे नहीं है। बल्कि उसकी आत्मा से है जो अविनाशी, सर्व-व्यापक और पूर्ण है। उसमें और मालिक के निज रूप में लेशमात्र भी भेद नहीं। और सिवाय गुरु की सेवा और सतसंग के और तरह से मुक्ति कठिन है।

हिन्दुओं में यह एक साधारण सी बात है। गुरु बिन गति नहीं, ज्ञान बिन मति नहीं। जो निगुरे हैं उनको उसके दरबार में दाखिल होने का अधिकार नहीं। अथवा उसका साक्षात्कार नहीं कर सकते। कहते हैं नारद जी परमेश्वर के भक्त थे। सहज में ही विष्णुलोक में जाकर दर्शन कर आते थे। जब वह वहां से चले आते। वह जगह लीप दी जाती थी। एक बार किसी कारण उनको लौट कर वापिस जाना हुआ। देखते क्या हैं कि उनकी जगह लिपी हुई पड़ी है। चकित हुए, पूछने लगे भगवान् ! यह क्या कारण है ? जवाब मिला नारद ! यह सत्य है तुममें भक्ति भाव तो बहुत है पर वह गुरुमुख द्वारा नहीं है। इसलिये जो गुरुमुख नहीं हैं वह जहाँ बैठते हैं वह स्थान अपवित्र हो जाता है। इस कारण तुम्हारे बैठने का स्थान तुम्हारे चले जाने के पीछे लीप दिया जाता है। जो शुद्ध होजाय। नारद को इसका ज्ञान था। बोले भगवन् ! आप मुझको अपना शिष्य बना लीजिए।

भगवान् बोले नियम यह है कि हम जिन्स अथवा एक योनि के संग से भजन सेवा का उपदेश प्राप्त किया जाय। अन्य योनी के संग में प्रेम नहीं हो सकता और न उसकी शिक्षा और उसका प्रभाव ही पड़ सकता है।

खग जाने खग ही की भाषा।
ताते उमा! गुप्त कुछ राखा॥

उन्होंने कहा फिर मुझे कोई मनुष्य ही बता दीजिये जिससे उपदेश लूँ। वह बोले कल प्रातः ही गंगा के तट पर जाना और जो व्यक्ति सब से पहले मिले उसको गुरु धारण कर लेना। उसकी पूजा सेवा तुम्हारे लिये हितकारी होगी। नारद चले आये। थोड़ी रात बाकी रही थी कि उठे। गंगा के तट पर जा पहुंचे। एक मल्लाह दिखाई दिया। नारद ने कहा राम! राम! यह क्या जानता होगा? इसको कैसे गुरु धारण करूँ! आँख मुँह बना कर वापिस चले। आवाज़ आई नादान! गुरु धारण करने आया था। भगवान् की बात की भी प्रतीत न हुई! अब तो नारद को आश्चर्य हुआ। समझे कोई त्रकालदर्शी ऋषि है। आकर नमस्कार किया और उससे गुरु दीक्षा ली। नारद ने पूछा भगवन्! गुरु प्राप्त करने का कारण क्या है? जवाब मिला मनुष्य में मेरा तेरा पना अधिक है। वह अपने मन के वशीभूत है। मन मत है। और मन मुख है। गुरु की सेवा में जाने से मन मुखता जाती रहती है। अहम् भाव की जड़ कट जाती है। और गुरु मुखता की दृष्टि लेकर परमार्थ कमाया जाता है। इसमें भय नहीं रहता। क्योंकि पाकी और पवित्रता का संस्कार सीना बसीना अथवा एक से दूसरे को मिल कर अपना काम सहज में कर जाता है। और किसी प्रकार का विघ्न नहीं होने पाता।

यह कहानी है। सम्भव है किसी ने यों ही गढ़ ली हो। पर बात सच्ची है। बिना गुरु के रास्ता चलना कठिन है। अव्वल तो यों ही सारी आयु भटकते २ बीतेगी। कुछ हाथ न आवेगा। दूसरे मेरे तेरे पने की जड़ न कटेगी और न काल व माया के बन्धन से मुक्ति मिलेगी।

वस्तु कहीं ढूँढे कहीं किहि विधि आवे हाथ।
कह कबीर तब पाइये जब भेदी लीजे साथ॥
भेदी लिया साथ कर दीनी वस्तु लखाय।
कोटि जन्म का पंथ था पल में पहुँचा जाय॥

जिसको गुरु प्राप्त होगये वह धन्य है। उसका काम बना हुआ है। यदि आज नहीं तो कल वह मोक्ष का अधिकारी बन जायगा। और जो बिना गुरु के काम करेंगे उनके हाथ कुछ न आवेगा।

जहाँ कहीं आत्मिक शिक्षा नहीं है। वहाँ गुरू के विरुद्ध आवाजें उठती हैं। माद्देपरस्त, धन के पुजारी, संसारी सार तत्व को क्या जानते हैं। आदि से लेकर आज तक जहाँ और जिस जाति में आत्मिक शिक्षा की प्रणाली है वहाँ गुरु शिष्य परम्परा हमेशा से जारी है। वेदों की शाखा और इनके मानने वाले इसी प्रकार के व्यक्ति हैं। उपनिषदों के सिलसिले में हर जगह यह नज़र आता है। छांदोग्य उपनिषद् में एक जगह सत्यकर्म की कथा आती है। इसको अग्नि, वायु व अन्य संसारी दृष्यों के देखने से ब्रह्म ज्ञान होगया था। जब वह गाय लेकर गुरु के पास आया। उसको हैरत हुई! पूछा तेरे ललाट से ब्रह्म वरचस का तेज चमकता है। किसने तुमको ब्रह्म विद्या सिखाई। वह बोला मुझको किसी मनुष्य ने विद्या नहीं सिखाई। मैं आप से सीखने आया हूँ, तब वह विद्या सुफल होगी। और ऐसा ही किया गया।

हिन्दुओं में गुरू ब्रह्मा हैं। गुरु विष्णु हैं, गुरु शिव हैं। गुरु परब्रह्म हैं। पर और जगह भी गुरु को इसी दृष्टि से देखा

जाता है। जहां कुछ भी आत्मिक शिक्षा है। जहाँ इसका अभाव है वहां इसका जिक्र भी नहीं। क्योंकि वहाँ मालिक की पूजा नहीं की जाती वहां मज़हब या धर्म का प्रयोजन कुछ और हुआ करता है। सूफियों में गुरु का दर्जा ईश्वर के बराबर माना जाता है।

गुरु ब्रह्मा गुरु विष्णु गुरु देव महेश्वरः
गुरुरेवः पर ब्रह्मः तसमई श्री गुरवे नमः

गुसाईं तुलसीदास जी की बाणी है :—

बंदों गुरु पद कंज कृपा सिंधु नर रूप हरि।
महा मोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर।

देखो कैसी गुरु की महिमा है, जहां २ गुरु की सेवा और पूजा है वहाँ ही आत्मिक भाव हैं। जहां गुरु को मनुष्य या महात्मा समझा जाता है वहाँ रुहानियत नहीं आती न आत्मा का साक्षात्कार होता है। क्योंकि हृदय में जो उच्च विचार या इष्ट का ध्येय काइम होना चाहिये था उसमें दोष रह जाता है। क्योंकि दृष्टि केवल मनुष्य के हाड़ मांस के शरीर पर रहती है इस कारण आत्मिक उन्नति रुक जाती है। कठिन समस्या हो जाती है। कबीर साहब की बाणी है।

जा खोजत ब्रह्मा थके सुन नर मुनि देवा।
कह कबीर सुन साधुआ कर सत गुरु सेवा।

परमार्थ गुरु की सेवा से बनता है। तुमने सतसंग की महिमा सुनली। जो गुरु की सेवा सच्चे मन से करते हैं उनकी महिमा उनसे भी बड़ी है। पर हो कोई भक्ति की निष्ठा में पूर्ण। जिसका संक्षेप में कुछ ऊपर वर्णन हुआ है। गुरु के पाँव छूने से उनका पवित्र संस्कार अपने में दाखिल होता है। गुरु के संग करने से उनका रंग ढंग नित्यप्रत्य यकीनी तौर पर चढ़ने लगता

है। खरबूज़ की भांति खरबूज़ रंग पकड़ता है। गुरु सेवा का और सतसंग का यह ही आशय है जिसका परिचय सतसंग में मिलता है। और यह ही कारण है कि जिन्होंने सच्चे दिल से गुरु की सेवा की है वह संसार में पूज्य और माननीय हुए हैं। दूर क्यों जाइये। पंजाब के दस बादशाहों के हालात पढ़ लीजिये। किस प्रकार गुरु की सेवा के प्रताप से इनका काम बना। जो व्यक्ति गुरु पर अपने तन मन को वार देता है उसमें अहंभाव की जड़ नहीं रहती। उसका जीवन मौजादीन रहनी का जीवन बन जाता है। काम करता है मगर काम नहीं भी करता। क्योंकि कर्म अहंकार और मेरे तेरे पने के साथ नहीं होता। गुरु का सेवक होना कठिन है।

गुरु भक्ति अति कठिन है ज्यों खांड़े की धार।
डिगमिगे तो गिर पड़े निश्चल उतरे पार।

सेवक की प्रशंसा हम क्या करें। महात्माओं ने जो कुछ कहा है उसी को सुनलो।

सेवक सेवा में रहे अन्त कहूं नहीं जाय।
दुख सुख सिर ऊपर सहे कहें कबीर समझाय।
फल कारण सेवा करे तजे न मन से काम।
कह कबीर सेवक नहीं चहे चौगुना दाम।
कबीर निर बन्धन बंध रहा बंध निर बन्धन होय।
कर्म करे करता नहीं दास कहावे सोय।
दुख सुख एक समान कर हर्ष शोक नहीं व्याप।
निह बैरी निह कामना उपजै छोभ न ताप।

कर्म करना और अकरता बना रहना। बन्धन में मोक्ष और मोक्ष में बन्धन यह सेवक का लक्षण है। कितना कठिन कार्य है। गुरु जिस पर दया करें वह ही सेवक हो सकता है। सेवक

का गुरु में पूरा पूरा विश्वास हो तब काम बनता है। यदि स्कूल के से मास्टरों का सा हाल है तो बस हो चुका।

गंगा जोर पर थी। मल्लाह नाव नहीं लाते थे। शंकर स्वामी एक ओर थे। उनके शिष्य दूसरे किनारे पर थे। एक २ चेले को अपनी धोती दे जाने को कहा। कोई तैयार न हुआ। कौन जान जोखम में डाले। केवल एक व्यक्ति शेष रह गया। उसने अपने सिर पर गुरु की धोती बाँध ली। लोगों को सुना कर कहा। जो गुरू अपनी दया से भवसागर से पार कर देता है। क्या वह मुझे गंगा के पार न कर देगा। यह कहा और धम से गंगा में कूद गये। और दूसरे किनारे पर पहुंच कर गुरु को धोती दी। और उनकी प्रशंसा के पात्र बने। इस चेले का नाम उसी दिन से पद्माचार्य रक्खा गया। लोग कहते हैं, गंगाजी ने इनके पाँव के नीचे कमल (पदम) के पत्ते बिछा दिये जो वे डूबने न पावे। यह विचार के प्रगट करने की कवियों की शैली है। सार यह है कि जिसके चित्त में गुरू का महत्व समा गया उसके लिये कोई वस्तु असम्भव या कठिन नहीं है।

गुरु अमरदासजी बुड्ढे थे। मगर बड़े उत्साह और प्रेम के साथ गुरु की सेवा किया करते थे। यह नित्यप्रति का नियम था। गुरु को नदी से पानी भर लाते और नहलाते। क्या सावन की सूखा और भादों की हरियाली वह सदैव विदेह ही कर्म किया करते थे। जाते समय पीठ नदी की ओर और मुख गुरु की ओर रहता था। लौटते समय भी इसका ध्यान रहता था। जो गुरु की बेअदबी न हो। एक दिन पानी जोर से बरसा। राह बन्द होगई। नदी नाले, सड़क, पगडंडी सब में जलो जथा हो गई। पानी से भर गये। पर गुरु के भक्त को अपना काम करना था। थोड़ी रात बाकी थी कि वह उठ खड़े हुए। छम २ बरसते पानी में

नदी पर गये। मिट्टी का घड़ा किसी तरह भरा। और भजन गाते हुए लौटे। जब गुरुद्वारे के निकट आये। सामने एक जुलाहे का घर था। मेघ अब भी बरस रहा था। रात अब भी कुछ बाकी थी पैरों के नीचे पृथ्वी पोली पड़ गई थी। अमरदासजी रपट पड़े। पर वाह रे ध्यान! रपटने को तो रपटे पर घड़े को ढुलकने न दिया। धमाके का शब्द हुआ। जुलाहे ने कहा कोई आदमी गिरा है या कोई कुत्ता कूदा है। जुलाहिनी ने उत्तर दिया। इस अंधेरी भयानक रात में अमरू बेचारे के सिवाय और कौन उठता होगा। वही गरीब दुखिया गुरु को पानी लेने जाया करता है। वही गिरा होगा। संयोग वश किसी प्रकार यह शब्द गुरु के कान में पड़ गये। अमरदासजी घड़ा लेकर पहुंचे। गुरु को स्नान कराया। और जब वह ध्यान में गये आप भी भजन करने लगे। प्रातःकाल हुआ। दरबार लगा। गुरु साहब ने आदेश दिया जाओ जुलाहिन को संग लिवा लाओ। वह आई। थर-थर कांप रही थी। गुरु ने पूछा माई! आज सवेरे तू क्या कह रही थी? वह डरी कहने लगी कृपा सागर! मैंने तो कुछ नहीं कहा था। धमाके की आवाज़ आई जैसे कोई गिर पड़ा हो। मेरे पति ने पूछा मैंने कहा जाड़े पाले की अंधेरी रात में अमरू बेचारे के सिवाय और कौन उठता है, वही गरीब पानी लेने गया होगा। वही गिरा होगा। इसके सिवाय महाराज! मैंने और कुछ नहीं कहा। इसके लिये जो जी में आवे दंड दीजिये। जुलाहिन बिदा करदी गई। आज्ञा हुई अमरदास को यहाँ लाओ! वह दूसरी जगह बैठे भजन गा रहे थे। आये। गुरु साहब उठे और अपने दरबार वालों को सुनाकर कहने लगे सुनो भाई! यह अमरू बेचारा या दीन दुखिया अमरू नहीं है। बल्कि राजाओं का राजा गुरु अमर दास है। यह कहा और अमरदास जी को अपनी छाती से लगा

लिया । और अपनी गद्दी पर बिठा दिया और आप उपदेश के कार्य से अलग होगये। यह गुरु सेवा का परम पुनीतऔर पवित्र उदाहरण है।

सेवक स्वामी एक मत जो मत में मत मिल जाय।
चतुराई रीझें नहीं रीझें मन के भाय ॥

अङ्गद जी महाराज नानक साहब के शिष्य थे। हर समय हितचित से सेवा करते थे। एक समय जानबूझ कर परीक्षा लेने के विचार से अपना गिलास कीचड़ में डाल दिया। लक्ष्मीचंद और श्रीचंद दो गुरू पुत्र थे। उनको उठाने का आदेश दिया गया। यह नौकरों को बुलाने लगे अङ्गद जी की ओर संकेत हुआ। उन्होंने बिना किसी पशोपेश के कीचड़ में हाथ डाल कर उसको निकाल लिया और अपनी धोती से पोंछ कर उपस्थित किया। इसी प्रकार अनेक बार साहबज़ादों की परीक्षा लीगई। एक बार रावी नदी में कोई चीज़ बही आरही थी। नानक साहब ने सब से पूछा क्या है? लोगों ने जवाब दिया मुर्दा है। नानक साहब ने पूछा यदि मैं कहूँ तो क्या तुम इस मुर्दे के मांस के दो चार ग्रास खालोगे? सबने मना कर दिया। अङ्गद जी की ओर संकेत हुआ। यह हाथ जोड़ कर बोले कृपा सागर आपका हुक्म सिरोधार्य! सिर आँखों पर। जो आपका आयुष होगा और जो आप प्रदान करेंगे, मैं प्रसन्नता पूर्वक खालूँगा। आदेश हुआ। नदी में कूद जाओ और वहां से इसके दो तीन ग्रास खाते हुए चले आओ! और यहाँ भी लाना। अंगद जी कूद पड़े। उसके पास पहुँचे देखा तो मुर्दा नहीं है। हलुआ है! दो तीन ग्रास तो खाये। और उसको गुरु के पास ले आये। और गुरु ने उसका सब शिष्यों को प्रसाद बाँट दिया। इन सब परीक्षाओं के बाद गुरु ने अपने साहबज़ादों और अन्य शिष्यों से उनका दर्जा सबसे बड़ा माना।

यह शायद गुरु रामदास जी की बात है कि उनके बूढ़े गुरु महाराज ने एक दिन सब शिष्यों को अलग-अलग चबूतरा बनाने का आदेश दिया। सबने बनाये और गुरु ने सब को बिगड़वा दिया। और फिर बनाने का हुक्म दिया और फिर बिगड़वा दिये। चबूतरे बन २ कर बिगड़ने लगे। लोग उकता गये। कहने लगे यह बूढ़ा सठिया गया है। इसकी मति मारी गई है। और फिर इनकी आज्ञा पालन करने से जी चुराने लगे, पर रामदास जी बराबर लगे रहे। कभी चित में उदास या मन मलीन न हुए आखिर गुरु महाराज ने पूछा क्यों रामदास! और तो सब भाग गये। तुम अब तक चबूतरे के बनाने बिगड़ने में लगे हुए हो। क्या तुमको कलेश नहीं होता? वे हाथ जोड़ कर बोले कृपासागर मैं सेवक हूँ। सेवक का काम सेवा करना है न कि तर्क और मने करना। एक बात तो यह है दूसरी बात यह है कि मुझको इस चबूतरे के बनाने बिगाड़ने में एक प्रकार की सेवा का सुअवसर मिला है। जो और दशा में सम्भव है न प्राप्त होता। मैं जितना आज्ञा का पालन करता हूं उतना ही मैं अनुभव करता हूँ कि मेरा मन पवित्र होता जारहा है। चबूतरा बने और बिगड़े इससे मेरा क्या प्रयोजन। मुझको तो आपकी आज्ञा पालन करने से काम है। धन्य भाग्य! जो मुझे बार-बार सेवा करने को मिली है। यदि जीवन पर्यंत मुझ से ऐसी सेवा ली जाती भी रहे तो भी मैं अधीर न हूंगा। और बराबर सेवा में तत्पर रहूंगा। गुरु महाराज अति प्रसन्न हुए। छाती से लगाया और अपना गद्दी नशीन बनाया।

सेवक सेवा में रहे सेव करै दिन रात।
कह कबीर कुसेवका सम्मुख ना ठहरात॥

भानीजी एक गुरु साहब की लड़की थीं। वह स्नान कर रहे थे। उन्होंने देखा कि तख्त का पाया खिसक रहा है। ऐसा न हो

कि गुरु महाराज गिर पड़ें और चोट लग जाय। झटपट अपना पैर पाये की जगह लगा दिया। कील नोकीली थी। पाँव में गड़ गई। जब तक गुरु महाराज स्नान करते रहे यह उसी दशा में चुपचाप बैठी रहीं। जब वह तख्त से उतरे देखा पृथ्वी खून से रंग रही है और भानीजी ने फिर जोर के साथ कील को पाँव में से खींच कर फेंक दिया। गुरु साहब बोले बेटी! यह क्या है? इन्होंने उत्तर दिया कृपासागर! यदि तख्ते का पाया निकल जाता तो आपको दुख होता। मैंने यह ही अच्छा समझा कि आप थोड़ा कष्ट झेल लूं जिससे आपको दुख उठाने की सम्भावना न रहे। वह मन में अति प्रसन्न हुए! बोले बेटी माँग क्या माँगती है? उन्होंने प्रार्थना की कि गद्दी मेरे घर में ही रहे। बात कठिन थी मगर वचन हार चुके थे। उसी समय से गुरवाई भानीजी की सन्तान में आगई।

कोई कहाँ तक वर्णन करे। इस प्रकार की महिमा की कथायें अनेक हैं। जिसने गुरु सेवा की वह संसार में यश का पात्र बन गया। और जीवन सफल बना लिया। जिसने इधर से मुख मोड़ लिया उसका अकाज हुआ।

—'०:—

कथा कल्पद्रम की अंतिम विवेचना

मेरे प्रेमी पाठको! ऊपर मैंने संक्षेप में ही थोड़े महात्माओं के विस्तार भय के कारण चरित्र सुना सका हूँ। और फिर साधु चरित्र! मैं क्या? मेरी बुद्धि क्या? चींटी पहाड़ को नहीं नाप सकती। मेंडक समुद्र की थाह नहीं ले सकता। मैं चींटी और मेंडक हूं। साधु चरित्र हिमालय और सिंधु हैं। आप मुझसे न आशा रक्खो कि मैं आपको अच्छी तरह इन महात्माओं के

चरित्र सुना सकूंगा। वह ऊंचा प्रकाशमय और तेजस्वी समाज है जहाँ फरिश्तों के भी पर जलते हैं। शेष महेश नारद शारद साधु महिमा नहीं गा सकते। गोस्वामी की बाणी है:—

साधु चरित शुभ सरस कपासू, निरस विशुद गुणमय फल जासू।
जो सह दुख पर छिद्र दुरावा, बन्दनीय जिहि जग जश पावा।
सो मोसन कहि जात न कैसे, साक भनिक मन गुण गण जैसे॥

अर्थः—साधुओं का चरित्र कपास के समान शुभदायक है। निरस है। उज्जवल है, उसका फल गुण वाला है। जैसे कपास बीनी जाती है, फिर चरखी में ओटकर बिनोले अलग किये जाते हैं। फिर धुनी जाकर काती जाती है। सूत बनता है। फिर कपड़े का रूप धारण करके दर्जी की सुई और कैंची के घाव सहन करती है और फिर दूसरों के दोष ढकती है। इसी प्रकार साधु संत औरों के अवगुणों को छिपाते हैं। इसी कारण संसार उनकी बन्दना करता है और जगत में उनका यश गाया जाता है। मैं क्या वर्णन करूं। साग भाजी बेचने वाला कुंजड़ा लाल और हीरे का मोल क्या कर सकता है?

यह ही हाल मेरा है। मैं साधुओं के चरणों का पूजने वाला हूँ। तुम भी उनके चरण पूजो। मैं उनके गुण गाता हूँ। तुम भी उनके गुण ज्ञान करो मैं उनका सेवक हूं। तुम भी उनकी सेवकाई करो। गुरू तुम्हारा कल्याण करेंगे।

मैंने कोई ऐसी बात नहीं लिखी जिसको मेरी आत्मा ने अनुभव न किया हो। यदि और भी तुम्हारी साधु चरित्र सुनने की लालसा होगी तो यह 'शिव' बराबर तुमको सुनाता रहेगा। मैं दिल से प्रार्थना करता हूँ कि महाप्रभो तुमको अपने चरणों की भक्ति प्रदान करें और गुरु तुम्हारा कल्याण करें।

संत दया सतगुरु मया पाया आदि अनादि।
गति मति कहते ना बने सुरत भई विस्माध॥